चन्दामामा
फरवरी १९८०
Rs 1.50

पारले
पारले

आपके बालों को
जरूरत है
रीटा द्वारा
देखभाल की
रीटा बालों को सवारने का एक उत्तम साधन है,
जो बहुत ही गाढ़ा और मोहक सुगंधवाला है।
इससे बाल नैसर्गिक रूप से घने बढ़ते हैं
और यह दिमाग को ठंडक पहुंचाता है।
'रीटा' स्त्री व पुरुष दोनों के लिए
श्रेष्ठ तेल है।
रीटा
RITA
RITA
रीटा से बाल सुंदर बढ़ते हैं।
एक शीशी आज ही खरीदिये।
हर जगह मिलता है।
वेटो कंपनी, बम्बई • कलकत्ता • मद्रास
Sona 21 HI

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

इस महीने की बेताल कथा "झूठे इलजाम" के द्वारा हमें यह विदित होता है कि ऊँचे पदों पर रहनेवालों को अतिरिक्त धन कमाने के ज्यादा मौक़े होते हैं। ऐसे लोग अगर अपनी आमदनी से बढ़कर अमीर बन जाते हैं, तो वे घूसखोर कहलाते हैं, लेकिन घूसखोरी और उपहार ये दोनों दो भिन्न चीज़े हैं।

अमर वाणी

दुर्जनै स्सह संपर्कः शत्रुतापि न युज्यतेः
गृहीते दह्यतेंगारे, शांते कृष्णायते करः ।।

[दुर्जनों के साथ मैत्री और शत्रुता भी त्याज्य हैं। कोयले के अंगारों को छूने से हाथ जलता है; पर ठण्डे कोयले छूने पर भी हाथ मैल हो जाता है।]

वर्ष : ३२ फ़रवरी १९८० अंक : ६

एक प्रति : १-५० : : वार्षिक चन्दा : १८-००
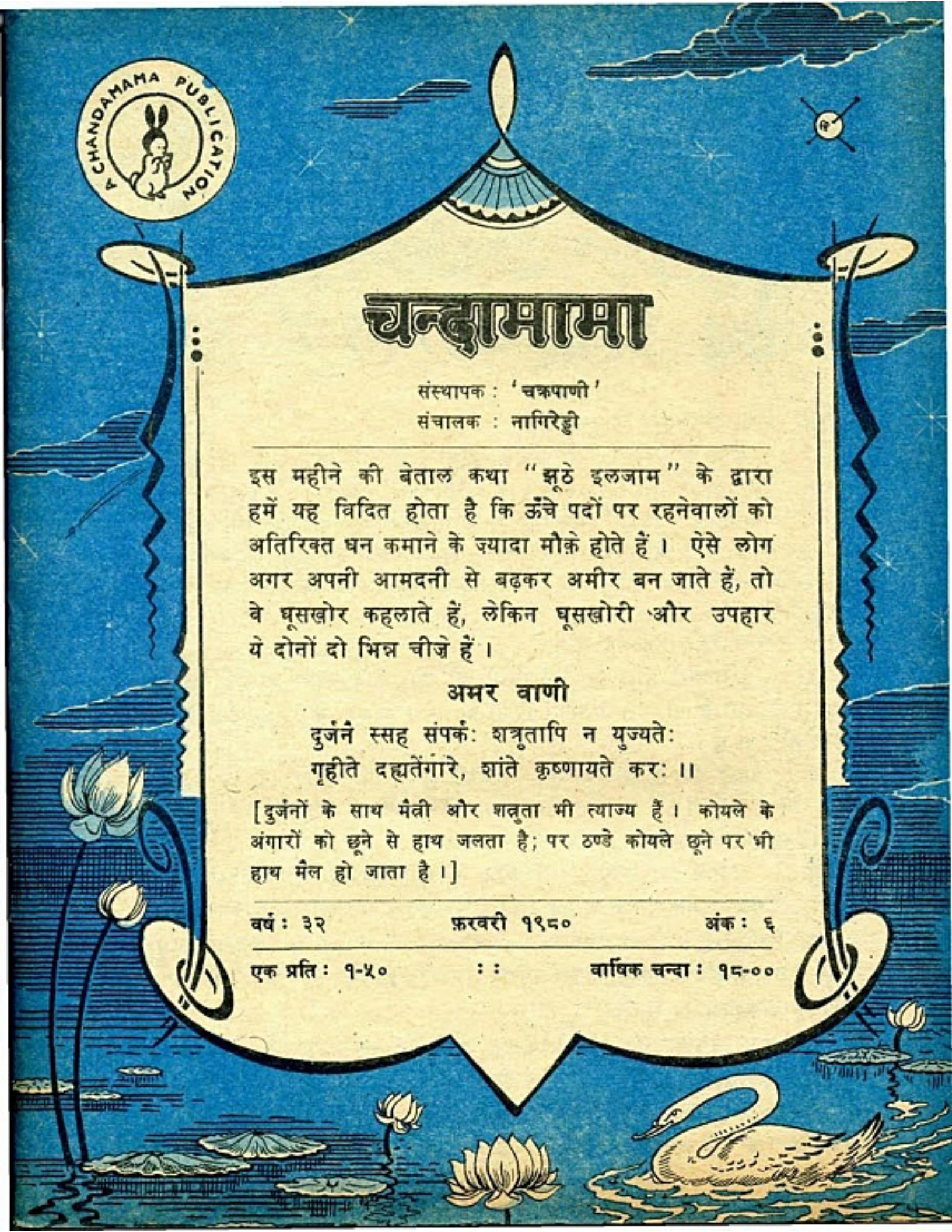
के. एस. आर. आंजनेयुलु, गुडिवाडा

प्र.: शिव के सर पर सदा अर्द्ध चन्द्र होता है, पूर्ण चन्द्र क्यों नहीं होता?

उ.: शिवजी के सर पर अर्द्ध चन्द्र भी नहीं होता, चौथ का चन्द्र होता है, चौथ का चन्द्र विनायक का संकेत है। शिवजी और विनायक का संबंध स्वीकार करने की बात अलग रख भी दी जाय, शिवजी के भीतर अनेक आराध्य देवता हैं–सर्प, गंगा और विनायक। ये सब प्रारंभ में भिन्न देवता थे, शिवजी का आधा अंश पार्वती, शिवजी का वाहन वृषभ भी एक जमाने में शिव के महत्व के बिना पूजनीय थे।

अडपाल गोपाल रेड्डी, महम्मदापुरम

प्र.: दक्षिणार्द्ध गोल के निवासियों को क्या ध्रुव नक्षत्र दिखाई देता है? यदि दिखाई नहीं देता है तो रात के वक्त दिशा का बोध करने के लिए उन्हें प्रकृति सिद्ध आधार ही क्या हें?

उ.: भूमध्य रेखा के दक्षिण में स्थित प्रदेशों में ध्रुव नक्षत्र दिखाई नहीं देता। दक्षिणाकाश में ध्रुव नक्षत्र भले ही न हो, पर दक्षिणी दिशा को सूचित करनेवाले प्रकाशमान अनेक नक्षत्र हैं।

जी. वीरभद्रराव, राजमंड्री

प्र.: जादूगर जो चमत्कार दिखाते हैं, उसे मिथ्या जानकर भी हम उनके प्रदर्शनों को सच मानकर भ्रम में पड़ जाते हैं। इसका क्या कारण हें?

उ.: जादूगरों के प्रदर्शनों का बड़ा आकर्षण झूठ है, जो पूर्ण रूप से सत्य जैसे होता है। क्या हम नाटक और सिनेमाओं को असत्य मानकर भी उन्हें नहीं देखते?

जोन्नलगड्ड राजकुमारी, भुवनेश्वर

प्र.: क्या नाग को एक और नाग डस दे तो वह मर जाएगा?

उ.: यह सवाल गलत है। प्रश्न यों होना चाहिए कि एक नाग का विष दूसरे नाग को पीड़ा देता है? हाँ, पीड़ा पहुँचाता है।

[उत्तर देनेवाले हैं: श्री हरीमिल्लर, F. Z. S. मद्रास]

[७९]

बदला लेनेवाले बंदर की कहानी सुनकर अत्यंत लोभी ने यों कहा :

"तुम्हारी बात सच है! जो लोग लोभ के वशीभूत हो जाते हैं, वे या तो कष्ट झेलते हैं या अपमानित होते हैं। मगर यह बात वे लोग तब समझ लेते हैं जब चिड़िया खेत चुग जाती हैं।"

"दोस्त! ऐसा मत कहो! मैंने तुम्हें पहले ही चेतावनी दी, फिर भी तुमने गीत गानेवाले गधे की तरह मेरी बातों की कोई परवाह नहीं की।" इन शब्दों के साथ अतिलोभी ने गीत गानेवाले गधे की कहानी यों सुनाई :

"एक जमाने में उद्धत नामक एक गधा रहता था। वह दिन में अपने मालिक धोबी के कपड़े ढ़ोता और रात के वक़्त स्वेच्छापूर्वक घूमता। यों खेतों में घूमते गधे ने एक लोमड़ी से दोस्ती कर ली। वे दोनों रात के वक़्त एक ककड़ीवाले खेत में घुसकर रात भर ककड़ी खाते और सवेरे तक अपने-अपने निवास को लौट जाते थे।

एक दिन रात को गधे ने भर पेट ककड़ी खा ली, उन्मत्त हो खेत के बीच खड़े होकर बोला—"अरे दामाद! देखो तो सही, यह ठण्डी चांदनी कैसे मन को उल्लास प्रदान करती है। इसलिए मैं कुछ गीत गाना चाहता हूँ। बताओ, तुम्हारे पसंद का राग कौन-सा है?"

"मामाजी! हम तो चोरी कर रहे हैं। ऐसी हालत में संगीत का सवाल उठाना ही गलत है। चोरों का व्यवहार हमेशा गुप्त रहना चाहिए। कहा जाता है कि श्वास संबंधी रोगी और निद्रालू

नहीं रखते। कहा जाता है कि आप्त मित्रों के बीच रहकर कर्ण मधुर संगीत सुननेवाले धन्य हो जाते हैं! तुम यह छोटी व सीधी-सादी बात तक नहीं जानते।"

"मामाजी! तुम्हारी बात सही हो सकती है, मगर तुम संगीत का ज्ञान नहीं रखते। सिर्फ़ रेंकना जानते हो! ऐसा काम ही क्यों करे जिससे हमारी हानि हो!" लोमड़ी ने समझाया।

"छी! मूर्ख! किसने तुम्हें बताया कि मैं गाना नहीं जानता? सुनो, संगीत के स्वर सात होते हैं, स्थाई तीन, मूर्छनाएँ इक्कीस, राग छत्तीस, भाव चालीस, भरतमुनि के द्वारा रचित नाट्यशास्त्र में १८५ अध्याय हैं। उनके सिद्धांत के अनुसार वेदों के बाद संगीत से बढ़कर कोई दूसरी चीज़ नहीं है। अपनी स्नायुओं को सुखाकर तंत्री बना करके लंका के राजा रावण ने संगीत की सृष्टि की और शिवजी को संतुष्ट किया। इसलिए हे दामाद, तुम कैसे बता सकते हो कि मैं संगीत की ज्ञानकारी नहीं रखता। मुझे संगीत सुनाने से रोककर क्यों हतोत्साहित करते हो?" गधे ने कहा।

"मामाजी, अगर तुम गाने का हठ करते हो तो मैं बाड़े के छेद के पास पहुँचकर देखता रहूँगा कि कहीं खेत के

व्यक्ति चोरी करने के लायक़ नहीं होते! उल्टे तुम्हारा संगीत कानों के लिए मधुर नहीं होता, तिस पर शंख-ध्वनि जैसे दूर तक सुनायी देगा। उस ध्वनि को सुनकर खेतों के पहरेदार नींद से जागकर तुम को पकड़ लेंगे। साथ ही मार भी बैठ सकते हैं! इसलिए मेरी बात मान लो और अपना संगीत सुनाने की बात भूल जाओ; पर तुम जितनी ककड़ियाँ खाना चाहते हो, मजे से खा लो।"

इस पर गधा बोला—"तुम तो जंगली प्राणी हो! तुम संगीत का महत्व क्या जानो? तुम्हारी बातों से ही साफ़ मालूम होता है कि तुम संगीत का बिलकुल ज्ञान

मालिक इधर आते हो! इसके बाद तुम अपने मनमाने ढंग से गान करो।" लोमड़ी ने वहाँ से निकलते हुए कहा।

इसके बाद गधे ने अपना आलाप शुरू किया। उसे भयंकर रूप से रेंकते सुनकर खेत का मालिक मारे क्रोध के दांत पीसते लाठी लेकर आ पहुँचा। गधे को बुरी तरह से पीटा, जिससे वह वहीं पर गिर पड़ा।

खेत का मालिक गधे के गले में एक भारी चट्टान बांधकर ककड़ी खाने के लिए आनेवाले दूसरे जानवरों को पकड़ने के ख्याल से चला गया और वहाँ लेटकर सो गया।

गधा जल्द ही होश में आ गया। अपने गले में बंधी चट्टान के साथ उठा और बाड़ी को पारकर भाग गया।

लोमड़ी ने दूर से ही गधे को देख कहा–"मामाजी, तुमने खूब गाया। मेरे मना करने पर भी तुमने मेरी बात नहीं मानी। तुम्हारे संगीत पर खुश हो तुम्हारे गले में जो रत्न बांधा गया है, वह बहुत ही बढ़िया है।"

संगीत का गान करनेवाले गधे की कहानी सुनकर अत्यंत लोभी बोला– "तुम्हारा कहना सच है। मैंने भी अब समझ लिया है। जो व्यक्ति स्वयं सोच

नहीं पाता, उसे कम से कम दोस्त की बात तो सुन लेनी चाहिए। वरना उसका फल भोग लेगा। मगर मुझ जैसे व्यक्ति के लिए ऐसा भी ज्ञान नहीं होता। अपनी कल्पनाओं में उड़ते हाथ में आई हुई लक्ष्मी को भी खो बैठता है। यह बात 'हवा में क़िले बांधना' नामक कहानी स्पष्ट कर देती है।" इन शब्दों के साथ यों कहने लगा :

किसी एक शहर में स्वभाव कृपण नामक एक ब्राह्मण था। एक बार किसी मांगलिक कार्य पर उसे दावत दी गई, भर पेट खाना खिलाकर मटके भर सत्तू भी दे दिया गया। कड़ी दुपहरी के वक़्त अपना

घर लौटते उसने एक पेड़ की छाया में आराम किया। सत्तूवाले मटके को एक डाल पर बांध दिया और उसे देखता रहा। इस बीच ठण्डी हवा के बहने से उसकी आँख लग गई। उस स्थिति में वह यों हवाई क़िले बांधने लगा :

"अकाल अगर पड़ गया—क्यों नहीं पड़ेगा?—तो इस मटके भर सत्तू को सौ चांदी के सिक्कों में बेच डालूंगा। उस धन से दो बकरियां ख़रीद लूंगा। छे महीनों में एक बार वे ब्यायेंगी। जल्दी ही बकरियों की रेवड़ बन जाएगी। उनमें से कुछ बकरियों को बेचकर गायें ख़रीद लूंगा। गायें हर साल बछड़े देंगी। कुछ गायों और बछड़ों को बेचकर भैंसें ख़रीद लूंगा। भैंसों की झुंड तैयार हो जाएगी। तब कुछ भैंसों को बेचकर घोड़ियों को लूंगा। वे बच्चे देंगी जिससे घोड़ों का दल तैयार हो जाएगा। घोड़ों के बेचने से जो सोना मिलेगा, उससे एक सुंदर महल बनवा लूंगा। मेरे वैभव को देख कोई ब्राह्मण अपनी सुंदर कन्या के साथ मेरा विवाह करेगा। दस महीनों के होते-होते मेरी पत्नी एक पुत्र का जन्म देगी। उसका नाम सोमशर्मा रखूंगा। जब वह घुटनों के बल चलने लगेगा, तब मैं एक क़िताब हाथ में ले घुड़साल के पीछे पढ़ता रहूँगा। सोमशर्मा मुझे देख अपनी माँ की गोद से निकलकर मेरी तरफ़ रेंगते आते घोड़ों के खुरों के नजदीक आ जाएगा, तब मैं गुस्से में आकर चिल्लाऊँगा—"अरी, बच्चे को उठा लो; बच्चे को उठा लो।" मगर वह घर के काम-काजों में डूबी रहने की वजह से मेरी बात पर ध्यान न दे सकेगी। इस पर मैं उठ खड़ा हो जाऊँगा और उसे डांटते हुए यों लाठी से पीट दूंगा...!"

यों सोचते ब्राह्मण ने अपनी लाठी सत्तू के मटके पर दे मारी, मटका फूट गया और सत्तू छितर गया। उसमें से थोड़ा-सा हिस्सा ब्राह्मण के सिर और कंधों पर भी आ गिरा।
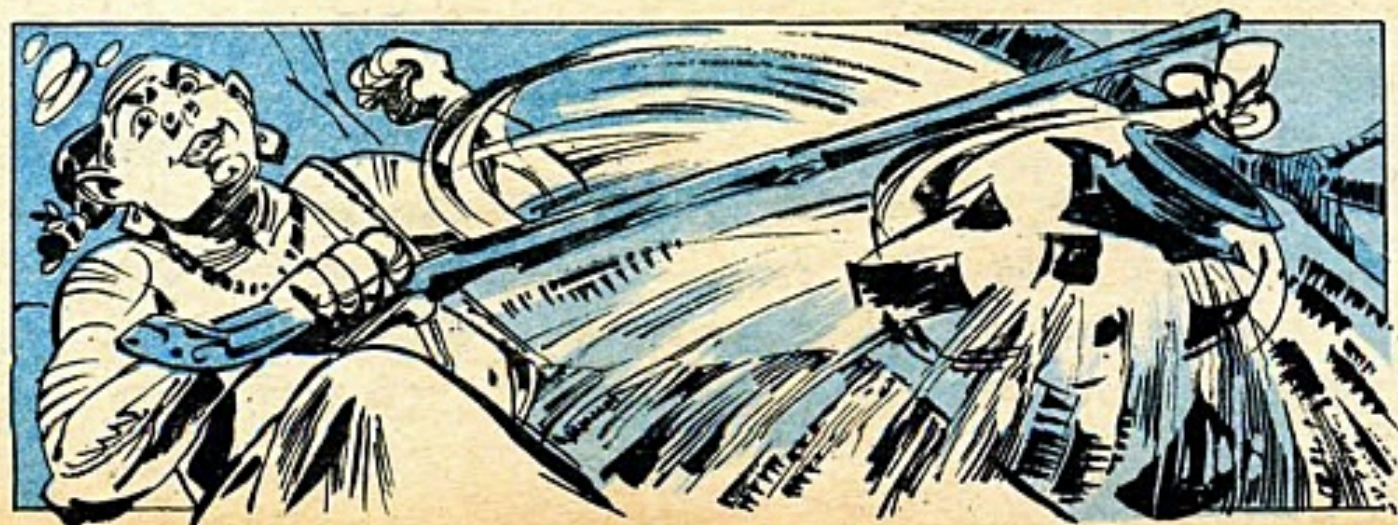
भल्लूक मांत्रिक

[१९]

[राजा जितकेतु ने घोषणा की कि माया मर्कट के मंत्र दण्ड को लानेवाले के साथ मैं अपनी दत्तक पुत्री का विवाह करूँगा और उसे आधा राज्य भी दिया जाएगा। इसके बाद माया मर्कट को क़िले की दीवार पर देख जंगली युवक ने उस पर बाण चलाया, मर्कट ने उस बाण को कालीवर्मा तथा भल्लूक मांत्रिक की ओर फेंक दिया। बाद...]

बाण की चोट खाने के पूर्व ही माया मर्कट चिल्ला उठा–'मेरा मंत्र दण्ड कहाँ?' इस चिल्लाहट को सब ने सुना। इस पर भल्लूक मांत्रिक विस्मय में आकर बोला–"हे मेरे शिष्य कालीवर्मा! तुमने उसकी पुकार सुनी है न? मर्कट ने मेरा जो मंत्र दण्ड चुरा लिया था, उसे या तो उसने खो दिया या किसी ने उसे चुरा लिया है। इसका यही अर्थ है न?"

कालीवर्मा बोला–"हाँ, गुरुजी! इस बंदर से किसी ने उस मंत्र दण्ड को चुरा लिया है। लेकिन हम कैसे पता लगा ले कि वह कौन है? अगर हम नगर में घुसना चाहे तो यह भी आसान मालूम नहीं होता! दुर्ग के दर्वाजे लोहे के हैं। राजा दुर्मुख के क़िले के दर्वाजे लकड़ी के बने थे, इस वजह से हम उनमें आग लगाकर आसानी से क़िले में घुस पाये।"

इस पर भल्लूक मांत्रिक बोला–"आज रात को हम लोग दुर्ग के बाहर ही डेरे लगाकर रात उनमें बितायेंगे। क़िले के दर्वाजे कैसे तोड़ना है, यह बात कल हम इतमीनान से सोच लेंगे।"

ये बातें सुन राक्षस उग्रदण्ड क्रोध में दांत भींचकर बोला–"मेरा पत्थरवाला गदा क़िले के दर्वाजों को तोड़ न पाया, पर देखता हूँ कि कहीं यह क़िले की दीवारों को तोड़ दे।" इन शब्दों के साथ उसने गदे से दीवार पर प्रहार किया। उस प्रहार से क़िले के पत्थरों में एकाध पत्थर टूट गया और उसके दो-चार टुकड़े नीचे गिरे। दूसरे ही क्षण दीवार पर से सैनिकों ने उग्रदण्ड पर बाणों की वर्षा की।

भल्लूक मांत्रिक ने उग्रदण्ड को हट जाने का आदेश दिया और कालीवर्मा से बोला–"कालीवर्मा! मेरे मन में यह संदेह हो रहा है कि कहीं किसी और मांत्रिक ने मर्कट के हाथ से मेरा मंत्र दण्ड चुरा लिया हो!"

भल्लूक मांत्रिक यों जब अपनी शंका प्रकट कर रहा था, तब राजमहल के सामने भालू के प्रहार से डरने के कारण मर्कट के हाथ से जो मंत्र दण्ड फिसलकर नीचे गिरा था, उसे अपने झोले में डालने वाले दो बैरागी युवक नगर के बाहर तालाब की मेंड पर बरगद के नीचे मंत्र जापनेवाले अपने गुरु की ओर बढ़ रहे थे।

उन युवकों में से छोटे के हाथ से बड़ा युवक मंत्र दण्ड अपने हाथ में लेकर बोला–"अरे भैया! यह मंत्र दण्ड गुरु के हाथ में सौंपने के पहले हम इसकी महिमा की जांच करके देख लेंगे।"

छोटे बैरागी ने स्वीकृतिसूचक सर हिलाया। तब बड़े ने मंत्र दण्ड को ऊपर उठाकर "अहां, इह्रीं, उहूं, खजाने के द्वार खोल दो।" मंत्र जपते उसे जोर से जमीन पर दे मारा।

उस वक़्त जो बड़ी आवाज हुई, उसे सुनकर गुरु बैरागी आँखें तक खोले बिना

बोला—"अरे भैरव बैरागी के सामने ही मंत्र का गलत उच्चारण करनेवाला पापी कौन है? मैं अभी उसे भस्म किये देता हूँ।" यों कहते गुरु बैरागी ने अपनी पीतल तथा चांदी के फूल जड़े नाटे दण्ड को ऊपर उठाया।

अपने गुरु के वचन सुन बैरागी के दोनों शिष्य भय कंपित हो उठे, इतने में मंत्र-दण्ड के प्रहार से जमीन में एक दरार पड़ गई और उसमें से एक जलधारा फौव्वारे की तरह छूट निकली। उसे देख दोनों शिष्य चकित हो उठे। गुरु बैरागी क्रोध में आकर दांत किटकिटाते हुए आँखें खोलने को हुए, तभी उन पर जलधारा मूसल धार की भांति गिर पड़ी।

भैरव बैरागी "गुरु प्रभू!" चिल्लाते उछलकर खड़े हो गये और बोले—"अरे, बिना बिजली की कड़क व चमक के यह वर्षा कैसी?" फिर दूर पर खड़े अपने शिष्यों की ओर देख पूछ बैठा—"अरे, जमीन से आसमान की ओर जलधारा ऊपर उठ रही है। यह कैसे आश्चर्य की बात है!"

ये बातें सुन बैरागी के दोनों शिष्य थोड़ी हिम्मत बटोरकर बोले—"भैरव गुरु! हम अपनी मंत्र-शक्ति के बल पर इस जलधारा को जमीन से ऊपर ले आये। अब हमारी विद्या समाप्त हो गई है न?"

गुरु की समझ में न आया कि यह सब क्या हो रहा है? वे विस्मय के साथ अपने

शिष्यों की ओर बढ़े, अपने बड़े शिष्य के हाथ में मंत्र दण्ड को देख चकित हो बोले–"अरे, यह क्या? मंत्र दण्ड जैसे लगता है!"

"गुरुजी! यह मंत्र-दण्ड जैसी चीज़ नहीं, बल्कि मंत्र दण्ड ही है। हमने तीन शब्दों का उच्चारण करके खजाने के दर्वाजे खोलने को कहा, पर इसने पाताल गंगा को ऊपर ला दिया।" बड़े शिष्य ने कहा।

इसके बाद भैरव बैरागी ने अपने शिष्य के हाथ से मंत्र दण्ड ले लिया, उसे इधर-उधर घुमाकर देखा, तब कहा–"यह मंत्र दण्ड किसी मांत्रिक के हाथ मसलकर चिकना हो गया है। यह आख़िर तुम्हारे हाथ कैसे आ गया? क्या तुम लोगों ने इसकी चोरी की? वह मांत्रिक कहाँ?"

बड़े शिष्य ने छोटे शिष्य को मौन रहने का इशारा किया, तब गुरु के हाथ से झट से मंत्र दण्ड छीन लिया, तब बोला–"गुरुजी! सब से पहले हमें जल की धारा को रोकना है! वरना कुछ ही घंटों में सारा नगर पानी में डूब जाएगा।" यों समझाकर मंत्र दण्ड ऊपर उठाया, फिर बोला–"तुम खजाने के दर्वाजों को बंद करो।" यों कहते जल-धारावाले प्रदेश पर जोर से दे मारा।

इस बार मंत्र दण्ड के आघात से पृथ्वी बड़ी ध्वनि के साथ फट गई, वहाँ पर एक विशाल खाई बन गई। उसे देखते ही भैरव बैरागी उछल पड़ा और बोला–"अरे शिष्यो, तुम लोगों ने चाहे जिस किसी भी प्रकार से इसे पा लिया हो, मगर यह मंत्र दण्ड मेरे वास्ते उपहार के रूप में ले आये हो! मैं तुम लोगों की गुरु भक्ति पर प्रसन्न हूँ! लगता है कि अब जल-धारा बंद हो गई है और खजाने के दर्वाजे खुल गये हैं! तुम लोग इसके नीचे उतरकर वहाँ के खजानों का पता लगाओ।"

छोटा शिष्य मंत्र दण्ड की ओर शंका भरी नज़र से देखता रहा, तब बोला–"भैरव गुरु! मुझे डर लगता है कि इस

मंत्र दण्ड की शक्तियों पर विश्वास करके हम लोग किन्हीं मुसीबतों में फंसने जा रहे हैं। हमने खजाने के दर्वाजे खोलने को बताया तो इसने जल-धारा को खोल दिया। क्या यह बात आप लोगों ने भांप ली? इसे देखते हुए मेरा विश्वास हिलता जा रहा है कि हमें खजाना मिल जाएगा।"

अपने शिष्य के मुंह से ये शब्द सुनने पर भैरव बैरागी के मन में मंत्र दण्ड के प्रति शंका पैदा हो गई। हम जो चीज़ चाहते हैं, वह चीज़ न देकर दूसरी चीज़ देता जाएगा तो वह हमें खतरों में डाल सकता है।

भैरव बैरागी यों सोचते हुए अपने बड़े शिष्य के हाथ से मंत्र दण्ड लेकर उसे परखकर देखने लगा, तब बड़ा शिष्य खिल-खिलाकर हँस पड़ा और बोला— "गुरुजी! हम नहीं जानते कि इस मंत्र दण्ड की महिमा क्या है? पर हम लोग एक काम करेंगे! इसकी मंत्र-शक्तियाँ रखनेवाले एक मर्कट के हाथ से हमने इसे प्राप्त कर लिया है। वह इस वक़्त राजा जितकेतु का महामंत्री है। उस राजा ने यह घोषणा की है कि खोये गये उस मंत्र दण्ड को ला देनेवाले को अपना आधा राज्य देकर उसके साथ वे अपनी पुत्री का विवाह करेंगे।"

आधा राज्य और राजकुमारी की बात सुनते ही भैरव बैरागी उत्साह में आकर चिल्ला उठा—"गुरु प्रभू!" फिर बोला— "अरे मेरे शिष्यो! तुम लोगों ने इस खास बात को अभी तक मुझ से बताये बिना छिपाकर रखा। तब तो मैं आधा राज्य ले लूंगा और तुम में से एक राजकुमारी के साथ विवाह करो। यह निर्णय तो बड़ा ही अच्छा है, मगर राजाओं की बातें इतनी जल्दी विश्वास करने योग्य नहीं होतीं! राजा जितकेतु अगर हमारे हाथों से मंत्र दण्ड लेकर हमारे सर कटवा दे तो हम लोग कर ही क्या सकते हैं?" यों कहकर सर झुकाये

बरगद के तने से सटकर लुढ़क पड़ा। अपने गुरु के मुंह से ये बातें सुनने पर बैरागी के शिष्यों के मन में भी यह शंका पैदा हो गई कि शायद राजाओं की बातें यक़ीन करने लायक़ न होंगी! छोटा शिष्य पृथ्वी पर बनी खाई के समीप जाकर बड़े शिष्य के हाथ के सहारे से सुरंग के अन्दर उतर पड़ा, तब दूसरे ही क्षण चिल्ला उठा—"भैरवगुरू! ऐसा लगता है कि यहाँ पर कोई सीढ़ियाँ और सुरंग भी हैं। शायद मंत्रदण्ड ने हमारे वास्ते खजाने के दर्वाजे खोलकर रख दिये हो!"

इस पर भैरव बैरागी उत्साहपूर्वक अपने शिष्यों के समीप आया, तब बोला—"अरे मेरे शिष्यो! हमारी क़िस्मत से अगर हमें गड़ा हुआ खजाना हाथ लगा तो फिलहाल हम उससे संतुष्ट हो जायेंगे! इसके बाद हम लोग इतमीनान से सोच लेंगे कि यह मंत्रदण्ड राजा के हाथ सौंप देना है या नहीं!" यों कहते वह भी अपने शिष्य के पीछे सुरंग के रास्ते नीचे उतरने लगा।

इसके बाद गुरु और शिष्य सीढ़ियाँ पार करते थोड़ी और गहराई तक पहुँचे। तब उन लोगों ने देखा कि वहाँ का सारा प्रदेश जल से भरा हुआ है। वे लोग घुटनों तक की गहराई में थोड़ी दूर और पैदल चले, तब उन्हें सुरंग के मार्ग में दूर पर धुंधली रोशनी दिखाई दी।

इस पर भैरावबैरागी बहुत ही खुश हुआ और अपने शिष्यों से बोला—"शिष्यो, वह रोशनी और कोई चीज़ नहीं है, खजाने के मणि-मानिकों की कांति से यों चकाचौंध कर रही है। मान लो, अगर उस खजाने की रक्षा करते हुए वहाँ पर कोई यक्ष हो तब हमें क्या करना होगा?"

"यह बात तो आप गुरु ही हमें बता सकते हैं?" बड़े शिष्य ने कहा।

ये बातें सुन छोटा शिष्य हँसते बोला—"भाई, तुम्हें गुरु के बताये मंत्र तो याद हो गये, मगर तुम्हें रत्ती भर भी लौकिक ज्ञान नहीं है! क्या तुमने कभी सोचा

भी है कि हमें खजाना दिखानेवाला यह मंत्रदण्ड कैसी अद्भुत शक्तियाँ रखता है? उस ख़जाने का पहरा देनेवाले यक्ष के शरीर पर यह मंत्रदण्ड छुआ दे, तो बस वह पटाखे की तरह भुन जाएगा!"

"अरे उप शिष्य! तुमने खूब कहा! मेरा मंत्रोपदेश अच्छी तरह से तुम्हारी समझ में आ गया है! अब तुम चुपचाप आगे बढ़ जाओ!" भैरव बैरागी ने रोशनी की ओर मंत्रदण्ड का इशारा करते हुए कहा।

उसी वक़्त सुरंग के ऊपर जमीन के हिलने की ध्वनि के साथ हाथी का चिंघाड़ भी सुनायी पड़ा। इस पर वे तीनों दो-चार पल तक डर के मारे स्तंभित रह गये। पर सब से पहले बैरागी संभलकर बोला–"अरे शिष्यो, लगता है कि हमारे बरगद के नीचे कोई जंगली हाथी या गज सैनिक आ गये हो! यदि वे हमारे इस गुप्त सुरंग मार्ग का पता लगाकर भीतर उतर आवे तो हमें क्या करना होगा?"

"आप तो हमारे गुरु हैं। इसलिए आप ही को सोच-समझकर हमें उपाय बताना होगा!" बड़े शिष्य ने कहा।

तब छोटा शिष्य खिल खिलाकर हँस पड़ा और बोला–"जंगली हाथियों और गज सैनिकों को तालाब की मेंडों पर खाइयों को देखने के सिवाय क्या दूसरा

कोई काम नहीं है? इसलिए आप लोग सामने दिखाई देनेवाले रत्नों के ढ़ेरों को छोड़ और बातों के बारे में बिलकुल न सोचियेगा!"

उसकी बात पूरी होने के पहले ही ऊपर से मिट्टी का एक ढेला टूटकर धम्म से उनके आगे गिर पड़ा। इस पर गुरु व शिष्य भयकंपित हो धीरे से चीख उठे और सुरंग की राह दौड़ने लगे!

उस वक़्त उस सुरंग मार्ग के ऊपर स्थित तालाब की मेंड पर डेरे लगवाने के ख्याल से अच्छी जगह की खोज करते हुए बधिक भल्लूक और जंगली युवक हाथी पर आ पहुँचे, तब उनका एक हाथी अचानक

जमीन में धंस गया। चिंघाड़ करते आगे की ओर गिर पड़ा। तब वे दोनों हाथी पर से नीचे कूद पड़े। मगर दूसरे ही क्षण हाथी जमीन पर अपनी सूंड़ का प्रहार करते उठ खड़ा हुआ।

बधिक भल्लूक ने एक बार चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई, तब जंगली युवक से बोला— "सुनो, कालीवर्मा साहब और भल्लूक मांत्रिक भी एक बार इस प्रदेश को देख लें तो अच्छा होगा! यहाँ पर पानी की कोई कमी नहीं है! हम राजा जितकेतु के जिस दुर्ग पर आक्रमण करना चाहते हैं, वह भी समीप में ही है। चाहे माया मर्कट ने जितने भी मंत्र क्यों न सीख लिये हो, अगर वह अपने स्वभाव से लाचार होकर जटावाले इस बरगद पेंड़ की ओर आ धमका तो हम बड़ी आसानी से उसे पकड़कर भल्लूक मांत्रिक के मंत्रदण्ड को हड़प सकते हैं।"

पर जंगली युवक बधिक भल्लूक की बातों पर कोई ध्यान नहीं दे रहा था। वह इस ख्याल से हाथी को इधर-उधर चला रहा था कि जाँच करके तो देख ले, कहीं हाथी का पैर टूट तो नहीं गया है! पर हाथी को पहले की भांति ठीक से चलते देख वह संतुष्ट हुआ, तब बधिक भल्लूक से बोला—"भल्लूक साहब! हमारे वाहन के पैर बिलकुल ठीक हैं! हम तो बड़े ही भाग्यवान हैं!"

दूसरे ही पल में बरगद की डालों में से एक बहेलिया नीचे कूद पड़ा और बोला—"यह तो क़िस्मत की बात ही कही जाएगी कि कपटी बैरागियों को जिस सुरंग ने अपने पेट में ले लिया, उस सुरंग की ओर तुम्हारा हाथी नहीं बढ़ा। वरना वह सुरंग तुम लोगों को भी बैरागियों की भांति अपने पेट के अन्दर समा लेता।"

ये बातें सुन बधिक भल्लूक "सिरस भैरव" पुकारते अपना परसु उठाकर चिल्ला उठा—"अबे, तुम कौन हो? माया मर्कट के शिष्य तो नहीं हो?" यों पूछते वह बहेलिये की ओर चल पड़ा। (और है)

झूठे इलजाम

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ पर से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजन, मैं नहीं जानता कि न मालूम आप किस नीति और नियम का पालन करने के हेतु यों श्रम उठा रहे हैं, लेकिन यह कहा नहीं जा सकता कि इस दुनिया में नीति की विजय होती है और अनीति को दण्ड मिलता है। इसके उदाहरण स्वरूप मैं आप को गिरिधर नामक व्यक्ति की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल यों सुनाने लगा: कई साल पहले की बात है। हरि प्रसाद नामक एक जमीन्दार तीन गाँवों का अधिपति था। पर जमीन्दारी के सारे मामले गिरिधर नामक एक समर्थ व्यक्ति देखा करता था।

बेताल कथाएँ

करनेवालों को हटाकर फल लानेवालों के प्रति ज़्यादा ध्यान देने लगा।

फिर क्या था, गिरिधर के द्वारा अपने काम बनानेवालों की संख्या और बढ़ गई। फिर फलों की जगह रुपयों ने ले ली। जब बिना माँगे रुपये अपने आप घर पहुँचने लगे तो उन्हें ठुकराने का मन गिरिधर को न हुआ। चाहे मंदिर के पुजारी की नौकरी हो या पाठशाला के शिक्षक की नौकरी हो, उसी आदमी को मिल जाती थी, जो रुपयों की भेंट चढ़ाता था। धीरे-धीरे गिरिधर की पत्नी के गले में इतने सारे गहने लद गये जिन्हें वह ढो नहीं पाती थी और उसका घर तरह-तरह के सामान से भर गया।

इसके परिणाम स्वरूप जमीन्दार के सभी गाँवों के लोग आपस में कानापूसी करने लगे कि हरि प्रसाद की जमीन्दारी में घूस देनेवालों को छोड़ सच्ची योग्यता रखनेवाले गरीबों की आजीविका के लिए कोई रास्ता नहीं है।

शेषगिरि नामक एक गरीब व्यक्ति ने अपने अनुभव के द्वारा यह बात जान ली। वह बड़ा ही निर्धन था। मधुकरी करके पढ़-लिख पाया। बड़ा अक़्लमंद भी था। उसने गिरिधर को अनेक बार प्रणाम किये। मगर वह फलों की एक भी टोकरी

वैसे वह अच्छा आदमी था, साथ ही जमीन्दार का विश्वासपात्र व्यक्ति भी। उसकी प्रत्येक सलाह का जमीन्दार आँख मूंदकर अमल करता था।

उन तीनों गाँवों के निवासी जो भी मदद चाहे तो गिरिधर को एक बार प्रणाम करके अपना काम बना लेते थे। धीरे-धीरे गाँवों की संख्या बढ़ी, साथ ही प्रणाम करनेवालों की तादाद भी बढ़ गई। जब एक ही तरह की मदद दो-तीन व्यक्तियों के लिए आ पड़ी, तब उनमें स्पर्धा शुरू हो गई। प्रणाम करनेवालों की स्पर्धा में कुछ लोग फलों की टोकरियाँ लाने लगे। इस कारण गिरिधर प्रणाम

उसे भेंट दे न पाया। फलत: उसे कोई भी नौकरी हाथ न लगी। इस पर शेषगिरि को बड़ा गुस्सा आया।

उसने जमीन्दार के घर पहुँचकर गिरिधर के प्रति शिकायत की–"महानुभाव, आप की जमीन्दारी का मामला बिलकुल खराब है। घूस देने पर मूर्ख को भी काम मिल रहा है, मगर पढ़े-लिखे व अक़्लमंद गरीब लोग नौकरी न पाकर अपनी बदक़िस्मती को कोस रहे हैं।"

शेषगिरि की ये बातें सुन जमीन्दार चकित रह गया। क्योंकि गिरिधर के प्रति जमीन्दार का अपार विश्वास था। इतने सारे वर्षों के बीच किसी ने भी गिरिधर के प्रति शिकायत नहीं की थी।

इस कारण जमीन्दार शेषगिरि की बातों पर यक़ीन न कर पाया, फिर भी बोला–"अगर तुम्हारी बात सच निकली तो तुम्हें गिरिधर की नौकरी दूंगा।" यों समझाकर उसे भेज दिया।

इसके बाद जमीन्दार ने मधुकरी करनेवाले एक ब्राह्मण को ढूंढ लाकर उसे समझाया–"सुनो, अमुक गाँव में एक मंदिर बनाया गया है। तुम सौ रुपयों की यह थैली ले जाकर उस गाँव के गिरिधर नामक आदमी के हाथ दे दो और मंदिर के पुजारी की नौकरी तुम्हें देने की प्रार्थना करो।" इसके बाद पूजा करने में ज्यादा अनुभव रखनेवाले एक और ब्राह्मण को बुलवाकर समझाया–"तुम अमुक गाँव के
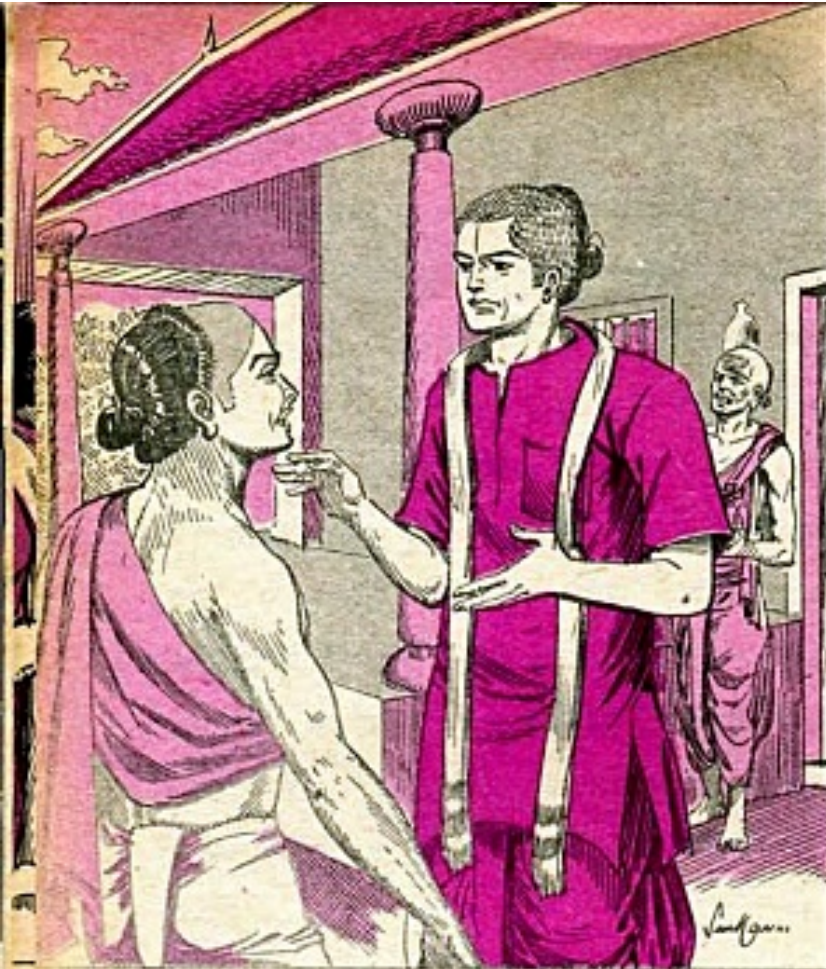
गिरिधर नामक व्यक्ति को प्रणाम करके नये मंदिर में पुजारी की नौकरी तुम्हें दिलाने की प्रार्थना करो ।" यों समझाकर दोनों को भेज दिया ।

वे दोनों ब्राह्मण लगभग एक ही समय गिरिधर के पास पहुँचे। मधुकरी करनेवाला ब्राह्मण रुपयों की थैली लेकर बैठा था। पर दूसरा ब्राह्मण गिरिधर के बचपन का दोस्त था । इस कारण देर तक वह अपने दोस्त के साथ बात करता रहा, अंत में उसके आने का समाचार जानकर बोला– "यह मंदिर तो हमारे जमीन्दार साहब का ही बनवाया हुआ है । तुम जैसे अनुभव रखनेवाले व्यक्ति को पुजारी नियुक्त करने से हमारे जमीन्दार साहब आपत्ति क्यों उठायेंगे ?"

फिर गिरिधर ने जान लिया कि मधुकरी करनेवाला ब्राह्मण भी इसी काम से आया हुआ है, वह बोला–"पूजा करने का तरीक़ा तक न जाननेवाले तुम्हें पुजारी का काम कैसे मिल सकता है? जाओ, चले जाओ, कोई दूसरा काम कर लो ।"

इसके बाद गिरिधर ने अपने बचपन के दोस्त को मंदिर के पुजारी के काम पर लगाने की जमीन्दार को सलाह दी । इस पर जमीन्दार ने शेषगिरि को बुलवाकर समझाया–"मैंने गिरिधर की परीक्षा ली । पर यह साबित न हो पाया कि वह घूसखोर है ।"

शेषगिरि खीझकर बोला–"अजी, गिरिधर को घूसखोर साबित करने के लिए क्या परीक्षा लेने की ज़रूरत है? उसकी पत्नी के गले में लदे गहनों को देख लीजिए! उसके घर में फैले सामान तो देख लीजिए! आप ही को खुद मालूम हो जाएगा कि आप जो उसे तनख्वाह देते हैं, उससे इतने सारे गहने व सामान कैसे वह खरीद सकता है ?"

जमीन्दार ने गाँवों के निरीक्षण के बहाने जल्द ही बिना सूचना दिये गिरिधर के घर जाने का निश्चय कर लिया ।

मगर इसके दो दिन पहले ही गिरिधर का साला गिरिधर के घर आ पहुँचा और बोला–"बहनोई साहब! हमारे गाँव में बढ़िया खेत बिक्री के लिए आया है। मैं खरीदना चाहता था, लेकिन मेरे पास रुपये नहीं हैं। तुम खरीद लो, सस्ते में मिल रहा है।"

इस पर गिरिधर ने संकोच तक किये बिना अपनी पत्नी के सारे गहने निकलवा कर साले के हाथ दिया और बोला–"तुम ये सारे गहने गिरवी रखकर खेत खरीद लो! इसके बाद खेत से जो आमदनी होगी, उससे गहनों को छुड़वा सकते हैं।"

उन्हीं दिनों में गिरिधर के पड़ोसी के घर में शादी आ पड़ी। उनकी ज़रूरत के वास्ते गिरिधर ने अपने घर के सारे सामान उन्हें दे दिये।

ऐसी स्थिति में अचानक गिरिधर के घर जमीन्दार साहब आ पहुँचे। गिरिधर उन्हें देख घबरा गया और बोला–"ओह! आप के बैठने तक के लिए साबित कुर्सी तक नहीं है।" यों कहते उसने एक कालीन बिछाया और उस पर जमीन्दार को बिठाने के लिए एक तिपाई रख दी।

गिरिधर की पत्नी यह कहते कि "आखिर एक चांदी का गिलास तक नहीं है।" एक साफ़-सुथरे कांसे के लोटे में दूध भरकर एक थाल में कुछ फल ले आई और जमीन्दार के आगे रख दिया। जमीन्दार ने उसकी ओर परखकर देखा।

जरूरत के लिए रख लो, बाद को हम इतमीनान से हिसाब देख सकते हैं।" यों समझाकर जमीन्दार चले गये।

इसके बाद जमीन्दार ने शेषगिरि को बुलवाकर डांटा—"तुमने जो शिकायतें कीं, उनमें एक भी सही साबित न हुई। गिरिधर का घर एक दम खाली है। उसकी पत्नी के गले में एक भी गहना नहीं है।" यों कहकर उसे भेज दिया।

शेषगिरि ने सोचा—"शायद ईश्वर ही उसकी रक्षा करते होंगे! वरना उसके जैसे घूसखोर को मैं अपराधी कैसे सातिब न कर पाया!"
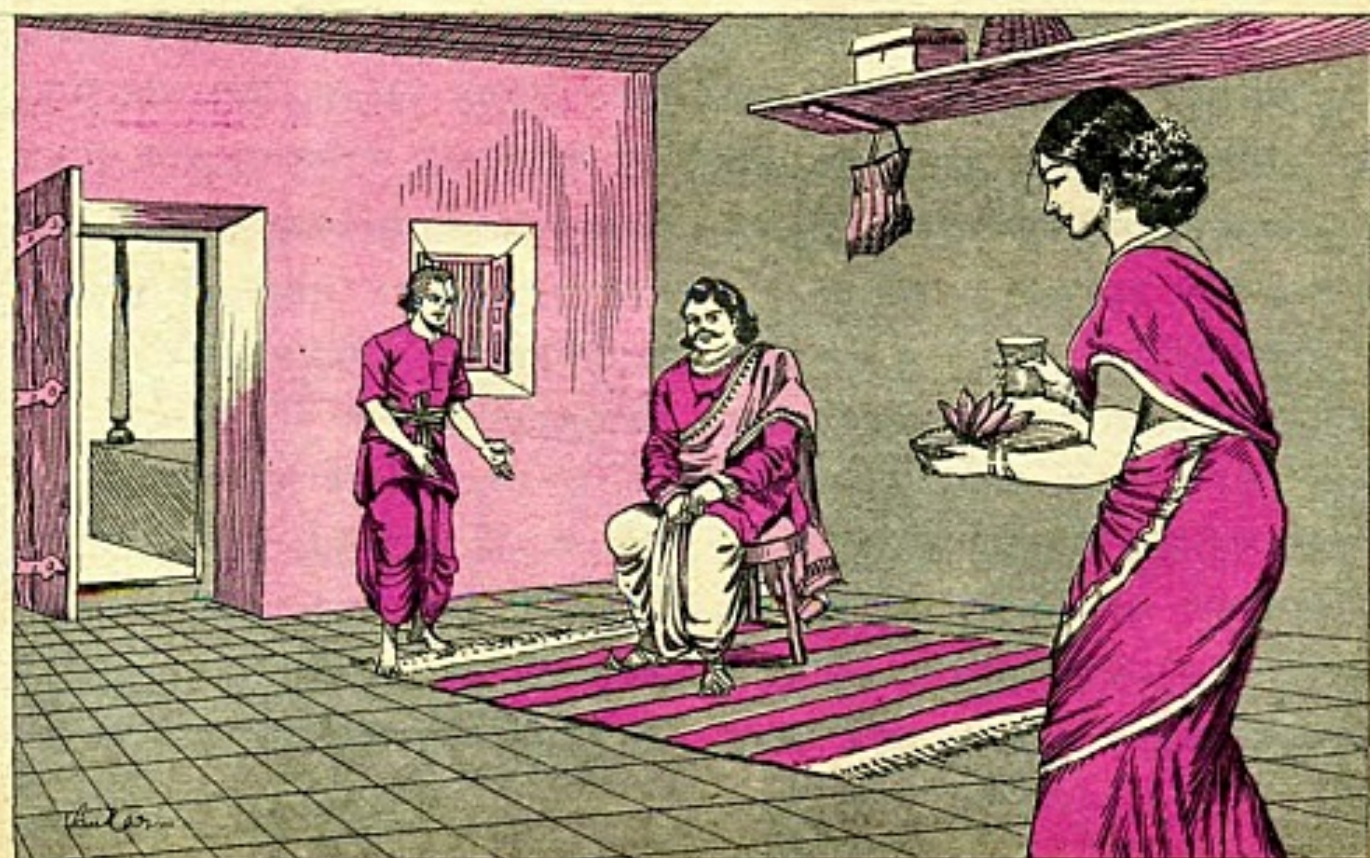
उसके गले में सिर्फ़ हल्दी में सींचा धागा मात्र था। हाथों में केवल कांच की चूड़ियाँ थीं। सारा घर सूना सूना लग रहा था।

"गिरिधर! गाँव में कोई जरूरी काम था, इसलिए सीधे चला गया। एक बार तुम्हारा भी परामर्श करने यहाँ आ पहुँचा।" ये शब्द कहते जमीन्दार उठ खड़े हुए।

गिरिधरबोला—"साहब! मैं ख़ुद आना चाहता था। थोड़ा लगान वसूल हो गया है।" इन शब्दों के साथ रुपयों की थैली लाकर जमीन्दार के सामने रख दी।

जमीन्दार को लगा कि गिरिधर एक दम दरिद्र की हालत में है। इस पर वे बोले—"फिलहाल तुम ये रुपये अपनी

बेताल ने यहाँ तक कहानी सुनाकर कहा—"राजन! संयोग से गिरिधर अपने अपराध के प्रकट होने से बच पाया, इसका मतलब क्या वह सजा पाने योग्य नहीं होता? ऐसे व्यक्ति पर आँख मूँदकर विश्वास करनेवाला जमीन्दार क्या मूर्ख नहीं होता? इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी न देंगे तो आप का सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने उत्तर दिया—"इसमें कोई संदेह नहीं है कि नौकरियाँ दिलाने में गिरिधर ने जिस तरीक़े का अवलंबन किया, वह नीतिपूर्ण नहीं है। मगर यह अनीति दो प्रकार की होती है।

कुछ लोग स्वार्थवश सामाजिक नीति का तिरस्कार करके अनीतिपूर्ण आचरण करते हैं। ऐसे लोगों की अनीति के लिए समाज की तरफ़ से ही दण्ड मिलता है! मगर गिरिधर के मामले में अनीति का कारण समाज में ही है। जमीन्दार के कर्मचारियों के द्वारा भेंट स्वीकार करने में कोई गलती नहीं है। मगर भेंट स्वीकार करने के बाद प्रत्युपकार करना लाजमी हो जाता है! गिरिधर ने जिस किसी को भी नौकरी दी, उसके वास्ते रिश्वत देने का कोई नियम नहीं रखा। इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि वह स्वार्थी नहीं है और उसे भेंट देनेवालों ने अपनी ही इच्छा से समर्पित की है। स्वभाव से वह अच्छा व्यक्ति है। दूसरों की सहायता करनेवाला है। मगर दूसरों को सतानेवाला नहीं है। वह जिन खेतों को खुद खरीद सकता था, उन्हें अपने साले के द्वारा खरीदने के लिए अपनी पत्नी के गहने उतरवाकर दे दिये थे। किसी पड़ोसी घर की शादी के वास्ते अपने घर के सारे सामान उधार में दे दिये। इसलिए स्वतः वह स्वार्थी और दण्डनीय नहीं है। वैसे ही जमीन्दार भी मूर्ख नहीं है। वह जिस गिरिधर पर पूर्ण विश्वास रखता था, उसके प्रति शिकायत आते ही उसने उसे तिरस्कार नहीं किया। दो बार उसकी कड़ी परीक्षा ली। अगर गिरिधर की संपत्ति प्रकट भी हो जाती तो जमीन्दार के द्वारा उसे दण्ड देने के लिए आवश्यक सबूत शेषगिरि दे नहीं सकता था। वह यह कि गिरिधर ने कभी किसी से यह नहीं कहा कि उसे रिश्वत देने पर ही वह नौकरी दिलाएगा। यदि ऐसे रिश्वत माँगने की आदत होती तो वह शेषगिरि से ही रिश्वत माँग बैठता। इससे यह साबित होता है कि जमीन्दार ने गिरिधर के प्रति जो विश्वास रखा, उसके वह सर्वदा योग्य है।"

राजा के यों मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

सच्चे सपने

रामगुप्त बड़ा ही कंजूस था। जान पर भी आ पड़े, तब भी वह एक पैसे का दान न देता था। एक बार उसने सपना देखा, उसमें उसे ये शब्द सुनाई पड़े–"सौ रुपये का दान करो, एक हज़ार रुपये हाथ लग जायेंगे।" रामगुप्त ने उस सपने पर विश्वास करके सौ रुपये ख़र्चकर गरीबों में अन्नदान किया। इसके बाद उसके दूर के एक रिश्तेदार ने अपने मरते वक़्त रामगुप्त को एक हज़ार रुपये दिये, इस तरह उसका सपना सच निकला।

थोड़े दिन बाद रामगुप्त ने दूसरा सपना देखा–"एक हज़ार रुपये ख़र्च करो, दस हज़ार मिल जायेंगे।" इस बार रामगुप्त ने भारी पैमाने पर एक हज़ार ख़र्च करके दान दिये। उसी दिन रामगुप्त का एक निकट रिश्तेदार मर गया और उसकी दस हज़ार रुपये की संपत्ति उसके हाथ लगी। यों दूसरा सपना भी सच निकला।

थोड़े दिन और बीत गये। रामगुप्त की पत्नी को सपने में ये शब्द सुनाई दिये–"दस हज़ार रुपये दान करो, एक लाख रुपये मिल जायेंगे।" रामगुप्त की पत्नी ने अपने सपने का वृत्तांत अपने पति को सुनाया। रामगुप्त का सपने के प्रति विश्वास जम गया था। उसने दस हज़ार रुपये ख़र्च करके सारे गाँववालों को दावत दी।

उसके दूसरे ही दिन रामगुप्त का देहांत हुआ और उसकी एक लाख रुपये की संपत्ति वह अपनी पत्नी के पीछे छोड़ गया।

इस प्रकार इस बार भी सपना सच होकर निकला।
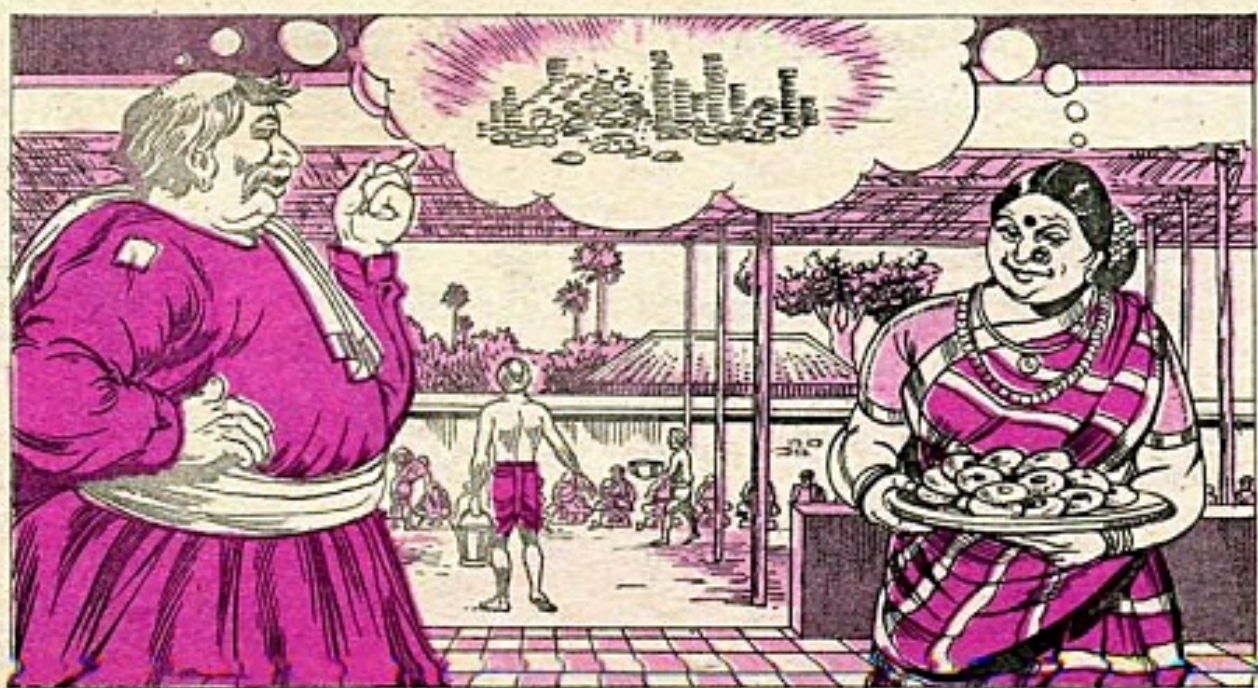
घमण्ड का नतीजा

सौ साल पहले की बात है। महोबा के राजदरबार में जगतसिंह नामक एक नामी पहलवान था। वह एक साथ पाँच-छे लोगों का खाना खा जाता, उसकी माँस-पेशियाँ उभर आई थीं। देखने में ही भयंकर लगता था। उसके साथ मल्ल-युद्ध करके सभी नामी पहलवान हार चुके थे। जो लोग उसके हाथों में हार जाते, वे खाट पकड़ लेते थे। इसलिए कोई भी पहलवान उसे मल्ल-युद्ध के लिए ललकारता न था। इस वजह से जगतसिंह घमण्डी बन गया। वह किसी से डरता न था। दूकानों में जाकर उसे जिस चीज़ की ज़रूरत होती, बिना पूछे उठा ले जाता था। कोई दूकानदार मना करता तो उसे बुरी तरह से पीट देता।

एक दिन एक बूढ़ी मौसंबी का झाबा लिये रास्ते पर बैठकर बेच रही थी। जगतसिंह ने ज़बर्दस्ती पाँच-छे फल उठा लिये। बूढ़ी ने पैसे माँगे, इस पर गुस्से में आकर जगतसिंह ने झाबे पर लात मार दी। सारे मौसंबी रास्ते पर बिखर गये।

बूढ़ी अपने फलों को उठाकर झाबे में डालते बोली—"अबे, तुम अपनी वीरता इस बूढ़ी पर दिखाते हो? अगर तुम वीर हो तो मेरे गाँव के प्रतापसिंह पर अपना रोब दिखाओ।"

जगतसिंह ने रोष में आकर पूछा—"तुम्हारा गाँव कौन-सा है?"

बूढ़ी ने जवाब दिया—"मेरा गाँव जमालपुर है।"

"अरी बूढ़ी लोमड़ी! मैं अपना पराक्रम दिखा दूँगा। कल इस समय तक मैं उस प्रतापसिंह का शव लाकर इसी गली में तेरे सामने डाल दूँगा।" यों कहकर जगतसिंह चला गया।

जयसिंह यादव
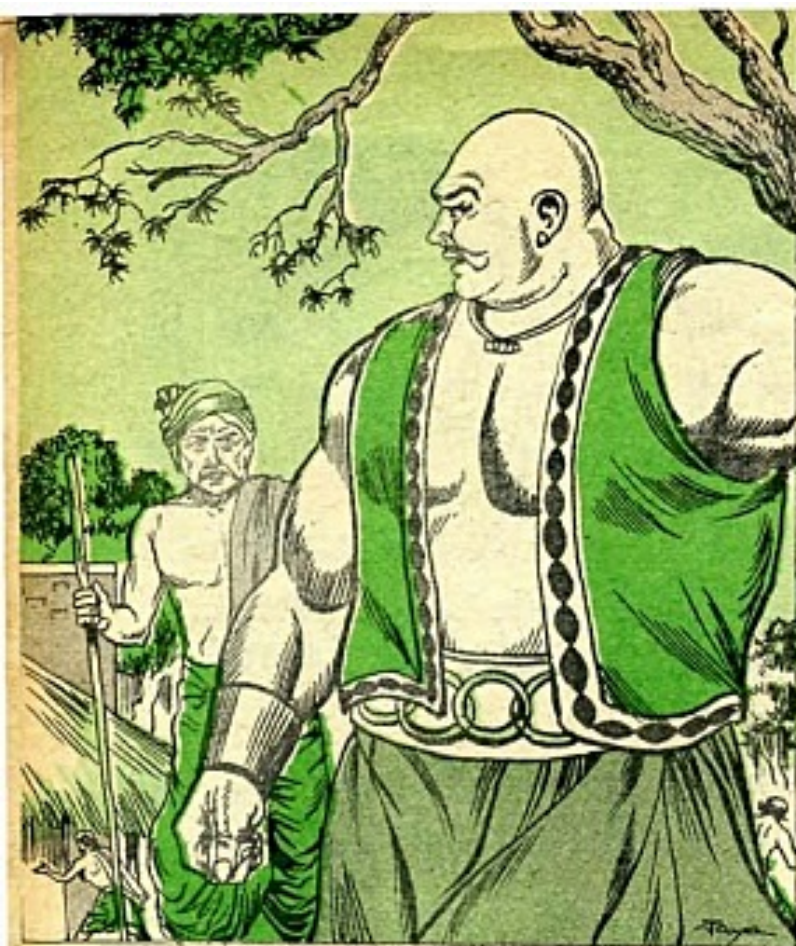
जगतसिंह का मन प्रतापसिंह को मार डालने के लिए खौल रहा था। वह उसी वक़्त एक तांगा ठीक करके जमालपुर पहुँचा। जगतसिंह को देख गांव के लोग इस तरह भागने लगे जैसे भूत को देख भाग जाते हैं! इस पर जगतसिंह ने दर्प के साथ मूँछों पर ताव दिया। आखिर उसे एक बूढ़ा दिखाई दिया। उससे बोला– "अबे बूढ़े! मैंने सुना है कि इस गांव में प्रतापसिंह नामक कोई आदमी है। क्या तुम बता सकते हो, वह कहाँ रहता है?"

"क्यों नहीं जानता, बेटा? गांव के बाहर एक बगीचे में वह भेड़ चराता रहता है।" बूढ़े ने जवाब दिया।

"अच्छी बात है! क्या तुम जानते हो, मैं कौन हूँ?" जगतसिंह ने पूछा।

"बेटा, तुम भी मेरे जैसे एक आदमी हो! लेकिन फ़र्क़ इतना ही है कि तुम जवान हो हट्टे-कट्टे हो! मैं बूढ़ा हूँ, दुबला-पतला हूँ!" यों जवाब देकर बूढ़ा लाठी टेकते वहाँ से चला गया।

इसके बाद जगतसिंह तांगा खोलकर गांव के बाहर इमली के बगीचे की ओर चल पड़ा। एक युवक इमली की टहनियाँ तोड़ भेड़ों को चराते हुए दिखाई दिया।

जगतसिंह ने उसकी ओर एड़ी से चोटी तक परखकर पूछा–"क्या तुम्हीं प्रतापसिंह हो?"

प्रतापसिंह ने इसके पहले जगतसिंह के बारे में जो कुछ सुना था, उसके आधार पर उसे पहचान लिया, पर तुरंत उसे अपना परिचय देना न चाहा, इसलिए वह बोला–"नहीं, वह तो मेरे बड़े भाई हैं। आप दरबारी पहलवान हैं न? हां, बताइये, मेरे भाई के साथ कैसा काम आ पड़ा?"

"सुना है कि वह बड़ा घमण्डी बन गया है। मैं उसका घमण्ड चूर-चूर करने आया हूँ।" यों जवाब देकर जगतसिंह ने इमली की एक डाल को पकड़कर खींच डाला, दूसरे ही क्षण वह डाल भयंकर ध्वनि के साथ टूटकर नीचे गिर पड़ी।

प्रताप ने अचरज का अभिनय करते कहा–"वह तो आप के आगे किस खेत की मूली है? उसको क्यों नाहक़ सताना चाहते हैं?"

"बताओ तो सही! वह इस वक़्त है कहाँ?" जगतसिंह हुंकार कर बैठा।

"वह तो पड़ोसी गाँव में गया है, रात को लौट आएगा! तब तक आप मेरे साथ ही रहियेगा। मैं भेड़ों को बाड़े में पहुँचाकर लौटता हूँ।" प्रतापसिंह ने समझाया।

इसके बाद प्रतापसिंह जगतसिंह को अपने घर ले आया और जोर से चिल्लाकर कहा–"माँ, एक मेहमान आये हैं! उनके लिए भी खाना बनाओ!"

"छी! तुम्हारा यह सादा खाना मेरे लिए किस काम का?" जगतसिंह ने मजाक़ किया।

"महाशय, भेड़ पकवाने के लिए मेरी नहीं हैं, ये तो गाँववालों की हैं। मेहर्बानी करके आज एक जून इस गरीब की मेहमानदारी स्वीकार कर लीजिए।" प्रतापसिंह ने कहा।

घंटे भर बाद वे दोनों खाने के लिए बैठे। प्रतापसिंह की माँ ने दो बड़े पत्तलों में दोनों को खाना परोस दिया।

जगतसिंह ने पहला कौर मुँह में डालकर पूछा–"छी, छी! यह भी कोई खाना है? या कंकड़-पत्थर हैं?"

"जिन बूढ़ों के दांत नहीं हैं, उनके लिए तो खाना बिलकुल पका हुआ होना

चाहिए। लेकिन पत्थर भी खाकर हजम करनेवाले हमें तो ऐसा ही खाना अच्छा लगता है।" प्रताप ने सहज रूप में कहा। इस पर जगत ने लज्जा का अनुभव किया। मगर मांस खाने के आदी हुए जगतसिंह को आधा पका अन्न गले नहीं उतरा। वह बार-बार पानी पीकर अपने गले को तर करने लगा। खाना न खावे तो उसके लिए अपमान की बात होगी।

जगतसिंह की परेशानी देख प्रतापसिंह मन ही मन हँस पड़ा और बोला—"माँ! तिल का तेल लेते आओ।"

जगतसिंह ने सोचा कि अब तो मैं बच गया। लेकिन प्रताप की माँ तिल का तेल नहीं, तिल ही ले आई।

"आप देखते क्या हैं? तेल डाल लीजिए।" यों कहते प्रतापसिंह ने अपने दायें हाथ में थोड़े तिल लेकर निचोड़कर उस तेल को खाने में मिला लिया।

जगतसिंह ने भी सोचा कि तिल को निचोड़कर तेल निकालना कोई बड़ा काम नहीं है, उसने भी थोड़े से तिल हाथ में लिये और निचोड़ने लगा। मगर उसके हाथ दुखने लगे, पर तेल की एक भी बूंद न निकली।

"क्योंजी? तेल नहीं निकला?" यों पूछते प्रतापसिंह ने अपने बायें हाथ से जगतसिंह के तिलवाले हाथ को पकड़कर निचोड़ डाला। इस पर जगतसिंह के हाथ से तिल के तेल के साथ कुनकुने खून की बूंदें भी गिर पड़ीं।

इस पर जगतसिंह के प्राण सूख गये, पर यह बात प्रकट करने में उसका अहं मानने को तैयार न था। उसने बड़े ही मुश्किल के साथ मुंह खोलकर यही कहा—"बस!"

इसके बाद प्रतापसिंह जगतसिंह का हाथ छोड़कर खाना खाने लगा।

जगतसिंह उठते हुए बोला—"भाई साहब! मैं अभी आया।" यों कहकर वह अपने जलनेवाले हाथ पर फूंक लगाते अंधेरे में ओझल हो गया और महोब के दरबार की ओर चल पड़ा।

उत्तम की कहानी

राजा उत्तानपाद के सुरुचि नामक पत्नी के द्वारा जो पुत्र पैदा हुआ, वही उत्तम है। उत्तम तो ध्रुव का सौतेला भाई है। राजा उत्तानपाद ने अपना राज्य उत्तम को ही सौंप दिया।

उत्तम ने बहुला नामक कन्या के साथ शादी की। मगर वह अपने पति की जरा भी परवाह न करती थी और अकसर उसका अपमान करती थी। इस कारण उत्तम ने उसे जंगल में छोड़ आने के लिए अपने सेवकों को आदेश दिया।

जंगल में घूमनेवाला पालपोतक नामक एक नागवंशी बहुला को देख उस पर मोहित हुआ और उसे अपने घर ले गया। मगर नाग की पुत्री यह सोचकर डर गई कि बहुला उसकी सौतेली माँ बन जाएगी, उसे एक गुप्त प्रदेश में रखकर उसका पालन करने लगी।

थोड़े दिन बीत गये। एक बार सुशर्मा नामक एक ब्राह्मण राजा उत्तम के दरबार में आया। उसने राजा से निवेदन किया—"महाराज! मेरी पत्नी का किसी ने अपहरण किया है। इसलिए कृपया मुझे उसे वापस दिला दीजिए।"

"तुम्हारी पत्नी कैसी होगी? उसके रूप-रंग क्या हैं?" उत्तम ने पूछा।

"महाराज! वह काली, नाटी, बूढ़ी और कुरूपिनी है।" ब्राह्मण ने कहा।

"ऐसी औरत के वास्ते तुम क्यों दुखी होते हो? किसी दूसरी नारी के साथ विवाह क्यों नहीं करते?" उत्तम ने पूछा।

"चाहे पत्नी जैसी भी हो, पति को चाहिए कि उसकी रक्षा करे!" ब्राह्मण ने समझाया। इस पर राजा उत्तम सुशर्मा की पत्नी की खोज में रथ पर सवार हो जंगलों में घूमते आखिर त्रिकालज्ञ नामक

मुनि के आश्रम में पहुँचा। त्रिकालज्ञ ने अपने शिष्य को आदेश दिया कि वह राजा के वास्ते अर्घ्य लेते आवे।

शिष्य ने पूछा–"गुरुदेव! आप सोचकर बताइये कि मुझे अर्घ्य ले आना है या नहीं?"

मुनि ने भांप लिया कि जिसके पत्नी नहीं है, उसे अर्घ्य नहीं देना है, तब राजा के आने का कारण पूछा। राजा ने सुशर्मा की पत्नी का वृत्तांत सुनाकर पूछा–"मुनिवर! मुझे क्यों अर्घ्य नहीं दिया?"

"जिसके कोई पत्नी नहीं है, वह अर्घ्य पाने योग्य नहीं होते! हाँ, आप ने सुशर्मा की पत्नी की बात पूछी। उसे बलाक नामक एक राक्षस उठा ले गया है।' मुनि ने जवाब दिया।

इसके बाद राजा उत्तम मुनि के आश्रम से निकलकर बलाक की खोज में चल पड़ा और वहाँ पर सुशर्मा की पत्नी को देखा।

सुशर्मा की पत्नी बोली–"यह राक्षस मुझे उठा ले आया है। मगर मुझे खाने या अपनी पत्नी बनाने के ख्याल से नहीं।"

उत्तम ने राक्षस से पूछा–"तो फिर तुम क्यों इस औरत को उठा लाये हो?"

राक्षस ने राजा का अतिथि-सत्कार करके कहा–"इस स्त्री का पति राक्षसों का संहार करने के लिए यज्ञ कर रहा है। मगर वह पत्नी के बिना यज्ञ नहीं कर सकता; यही सोचकर मैं इसे उठा लाया हूँ।" फिर भी राक्षस ने उस स्त्री को उत्तम के हाथ सौंपने के लिए मान लिया।

इस पर उत्तम सुशर्मा की पत्नी को लेकर त्रिकालज्ञ के आश्रम को लौटा, मुनि से पूछा कि वे बहुला का पता बता दे।

मुनि ने कहा–"राजन! आप की पत्नी को पालपोतक नामक नाग उठा ले गया है। नाग की पुत्री उसकी रक्षा कर रही है।" इसके बाद उत्तम ने बलाक को भेजकर अपनी पत्नी को मंगवा लिया।

उस दिन से बहुला अपने पति की अनुरागिनी बनी रही। थोड़े दिन बाद उसनें उत्तम नामक एक पुत्र का जन्म दिया। वही उत्तम मनु है।

प्रार्थना की महिमा

राजा अंबरीष जब कोसल देश पर राज्य करते थे, उन दिनों में एक बार भयंकर अकाल पड़ा। नदी, नाले व कुएँ सूख गये। नाम मात्र के लिए भी फ़सल न हुई।

इस पर मंत्री व पुरोहितों ने राजा को सलाह दी कि अश्वमेध याग करने पर वर्षा होगी और अकाल दूर होगा। वह यज्ञ बड़ी ही सावधानी के साथ करनेवाला था!

उस यज्ञ के वास्ते सभी लक्षणों से पूर्ण एक घोड़ा लाया गया। उसे खूब धो-धाकर साफ़ किया गया। उसे सजाकर बलि देने के लिए तैयार किया गया।

देवताओं ने सोचा कि अंबरीष इंद्र पद को पाने के वास्ते यज्ञ कर रहे हैं, वे डर गये और यज्ञ में बाधा डालने के ख़्याल से यज्ञ के अश्व को देवताओं ने चुरा लिया।

यज्ञ के अश्व को न पाकर राजा और पुरोहित बहुत दुखी हुए। उसकी खोज कराई, राजभटों ने जंगलों, पहाड़ों और सर्वत्र अश्व को ढूंढ़ा, मगर उन्हें कहीं घोड़े का पता न चला।
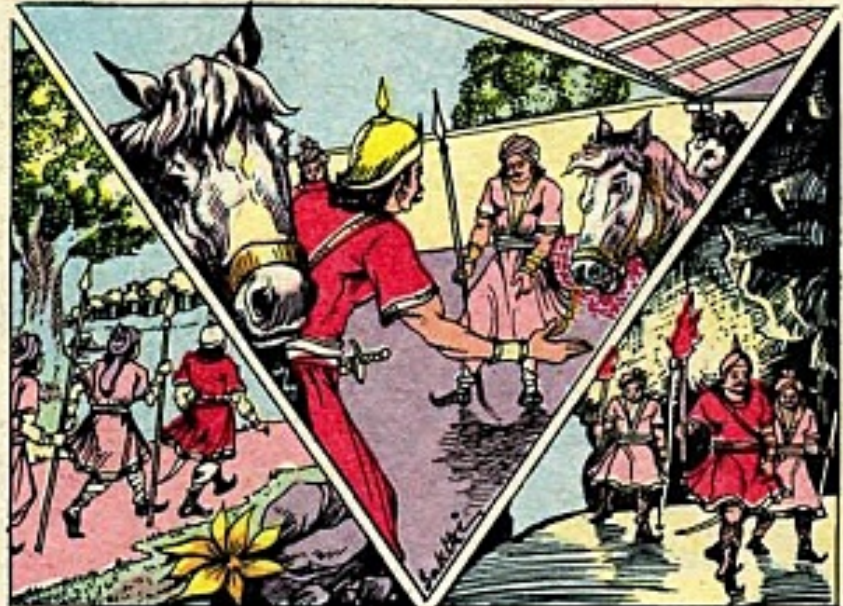
इस पर राजा चिंता में पड़ गये। तब पुरोहितों ने राजा को समझाया कि उस हालत में अश्व के बदले यज्ञ के वास्ते किसी ब्राह्मण बालक की बलि देने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

उचित लक्षणों से युक्त हो बलि-पशु के रूप में काम दे सकनेवाले बालक को पाना साधारण बात न थी। बहुत खोज-ढूंढ़ने पर राजा को मालूम हुआ कि रुचिक नामक मुनि के तीन पुत्र हैं, इस पर राजा वहाँ पहुँचे।

पर रुचिक अपने ज्येष्ट पुत्र को देने के लिए बिलकुल तैयार न हुए। रुचिक की पत्नी ने अपने छोटे पुत्र को देने से इनकार किया। तब मंझला पुत्र शुनश्शेप बलिपशु बनने के लिए आगे आया।

राजा संतुष्ट हुए, शुनश्शेप को साथ लेकर अपने राज्य की ओर चल पड़े। रास्ते में मुनि विश्वामित्र का आश्रम आ पड़ा। विश्वामित्र ने शुनश्शेप से जान लिया कि वह बलिपशु होने जा रहा है। इस पर उन्हें उस बालक पर दया आई।

विश्वामित्र ने शुनश्शेप को एक मंत्र का उपदेश दिया और समझाया कि उसका पठन करने से वह विपदा से मुक्त हो सकता है। इसके बाद राजा ने शुनश्शेप को लाकर बलि के लिए तैयारियाँ करवा दीं।

शुनश्शेप को जब बलि देने के लिए ले जाया जाने लगा, तब उसने विश्वामित्र के द्वारा प्राप्त मंत्र का पठन किया। इस पर जहाँ के लोग वहीं पर जड़वत खड़े रह गये।

फिर क्या था, अचानक अग्निकुंड में इंद्र प्रत्यक्ष हो गये, अंबरीष को यज्ञ का फल देकर शुनश्शेप को मुक्त कराया। देवताओं ने शुनश्शेप की रक्षा की, इस कारण उसका नाम देवरात पड़ा।

देवयानी

इंद्र ने दूसरों की तपस्या भंग करने के लिए जो प्रयत्न किये, उनमें थोड़े से सफल हुए और थोड़े असफल भी हुए ।

शुक्र जब भयंकर तपस्या कर रहे थे, तब उसमें बाधा डालने के लिए इंद्र ने अपनी पुत्री जयंती को ही भेजा । मगर शुक्र की तपस्या भंग न हुई, बल्कि उनकी तपस्या सफल हुई और ब्रह्मा ने उसे वरदान भी दिये । मगर जयंती जिस काम से आई थी वह भी व्यर्थ न हुआ । उसने शुक्र के साथ गृहस्थी चलाकर देवयानी नामक पुत्री का जन्म दिया ।

देव-दानवों के युद्ध के समय मृत संजीवनी विद्या सीखने के लिए कच शुक्र के पास आया और उसकी शुश्रूषा करने लगा । उन दिनों में देवयानी कच पर मोहित हो गई । कच को राक्षसों ने कई बार मार डाला, मगर देवयानी अपने पिता के द्वारा उसे बार-बार जीवित करवा देती थी । कच भी देवयानी की कृपा से बार-बार मरकर भी जीवित हो जाता, साथ ही वह मृत संजीवनी विद्या भी प्राप्त कर सका ।

कच जिस काम के वास्ते आया था, उसके सफल होने में देवयानी ने भारी सहायता की थी, फिर भी कच ने देवयानी के प्रेम का तिरस्कार किया । गुरु पुत्री को अपनी बहन के बराबर बताकर विवाह नहीं किया ।

शुक्र वृषपर्व नामक दानव राजा के नगर में निवास करता था । वृषपर्व के शर्मिष्ठा नामक एक पुत्री थी । शर्मिष्ठा के साथ देवयानी की मैत्री थी ।

एक दिन शर्मिष्ठा और देवयानी अपनी सखियों के साथ सरोवर में स्नान करने गईं और अपने वस्त्र खोलकर सरोवर की मेंड़ पर रख दिये । जब वे स्नान कर

रही थीं, तब झंझावात आया जिससे उनके वस्त्र मिल गये। शर्मिष्ठा ने सरोवर से निकलकर उसके हाथ जो साड़ी आई, उसे पहन ली। वह साड़ी देवयानी की थी।

इसके बाद देवयानी स्नान समाप्त कर लौटी, उसने शर्मिष्ठा के साथ झगड़ना शुरू किया–"मैं तो ब्राह्मण युवती हूँ। मेरे पिता तुम्हारे पिता के कुलगुरु हैं। तुमने मेरा वस्त्र पहन लिया और तुम मुझे अपना वस्त्र पहनने को कहती हो?"

"तुम अपनी हेठी क्यों जताती हो? मेरे पिता के अधीन तुम्हारे पिता सेवक हैं।" यों कहते शर्मिष्ठा ने देवयानी को एक कुएँ में ढकेल दिया, अपनी सखियों के साथ राजमहल को लौट आई।

कुएँ में गिरकर देवयानी रो रही थी, तब शिकार खेलने आये हुए ययाति नें अपने हाथ का सहारा देकर उसे बाहर निकाला। इस बीच देवयानी की खोज करते घूर्णिका नामक एक परिचारिका आ पहुँची। पर देवयानी ने शर्मिष्ठा के नगर में जाने से इनकार किया। यह बात मालूम होने पर शुक्र भी वृषपर्व के नगर को छोड़कर जाने के लिए तैयार हो गया। इस पर वृषपर्व ने अपनी पुत्री के अपराध को जानकर उसे देवयानी की दासी के रूप में दे दी।

ययाति ने देवयानी का हाथ पकड़ लिया था, इसलिए देवयानी ने यह तर्क करके कि उसका पाणिग्रहण हो गया है, इसलिए वही उसका पति है. अंत में उसके साथ विवाह किया। जब वह अपने पति के घर जा रही थी, तब शर्मिष्ठा भी उसके साथ चली गई। ययाति के द्वारा देवयानी की कोई संतान न हुई। पर ययाति ने गुप्त रूप से शर्मिष्ठा के द्वारा पुत्र पैदा किये।

यह बात बहुत दिनों तक देवयानी पर प्रकट न हुई, मगर जब मालूम हुई, तब उसने अपने पिता को बताकर उसके द्वारा ययाति को वृद्धावस्था प्राप्त करने का शाप दिलवाया।

चोर-चोर मौसेरे भाई

नरसिंगपुर में दिन दहाड़े अनोखी चोरियाँ होने लगीं। लेकिन सिपाहियों को चोरों का पता लगाना बड़ा मुश्किल हो गया। क्योंकि ऐसा लगा कि चोर नगर के अलग-अलग मुहल्लों में एक ही समय चोरियाँ करता है। इसलिए सिपाहियों की समझ में न आया कि उसकी टोह कहाँ पर और कैसे लगाई जाय!

इसकी ख़ास वजह यह थी कि चोरियाँ करनेवाले गजसिंह और शेरसिंह दोनों नामी डाकू थे। दोनों चोर-विद्या में प्रवीण थे। इस कारण साथ-साथ चोरियाँ करना उन्हें पसंद न था। पर वे एक दूसरे के रोड़े बने हुए थे और प्रतिद्वन्द्वी भी। इसलिए वे यही सोचा करते थे कि एक दूसरे को कैसे ख़तम कर डाले।

राजा ने सोचा कि चोर को पकड़ना मुश्किल है। इसलिए उन्होंने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो चोर को पकड़ा देगा, उसे दस हज़ार रुपये का इनाम दिया जाएगा। इस पर गजसिंह और शेरसिंह अपने अपने वेष बदलकर राजा की सेवा में पहुँचे। एक-दूसरे का पता बता दिया। इस प्रकार दोनों पकड़ गये; मगर इनाम किसी को भी नहीं मिला।

रहज़नी

रघुपति का गाँव शहर से दस मील के फ़ासले पर था। उसके घर कोई मांगलिक कार्य होनेवाला था। इस वास्ते रघुपति का मित्र श्रीकंठ संध्या के समय एक घोड़ा गाड़ी ठीक करके रघुपति के गाँव की ओर रवाना हुआ।

शहर और रघुपति के गाँव के बीच एक छोटा सा जंगल था। उस जंगल में कुछ दिन पहले एक चोर ने रघुपति को लूट लिया था। उस लूट का सारा वृत्तांत रघुपति ने श्रीकंठ को बता दिया था।

वह यों है: रघुपति किसी काम से शहर को आया। लौटने में देरी हो गई। संध्या के वक़्त अपने गाँव जाने के लिए घोड़ा गाड़ी ठीक कर ली। जंगल में बड़ी दूर की यात्रा के बाद एक मोड़ पर रास्ते को रोके पेड़ की एक डाल गिर गई थी। इसलिए गाड़ी रुक गई।

उसी समय पेड़ की आड़ में से एक नक़ाबवाला व्यक्ति छुरी लेकर आ पहुँचा, रघुपति के कंठ पर उसकी नोक टिकाकर बोला—"तुम्हारे पास जो कुछ है, मेरे हाथ दे दो।" इसके बाद रघुपति का सारा धन लेकर गाड़ीवाले को भी धमका करके उसके भी रुपये लिये और पेड़ों की ओट में चला गया।

गाड़ीवाले ने सर पीटते हुए कहा—"मैंने पहले ही बताया था कि अंधेरे में यात्रा करना ठीक नहीं है। मैंने अपनी बेटी की शादी के वास्ते जो पांच सौ रुपये जमा किये थे, चोर ने लूट लिये।"

रघुपति ने अपने घर पहुँचकर गाड़ीवाले को पाँच सौ रुपये दे दिये। उस रात को अपने घर टिकाकर दूसरे दिन उसे भेज दिया। एक साल पहले यह जो घटना घटी थी, उसी के बारे में अंधेरे में यात्रा

दिनेश गर्ग

करते घोड़ा गाड़ी में बैठा श्रीकंठ रघुपति के गाँव जाते सोच रहा था।

इतने में गाड़ी एक मोड़ को पार करने लगी। वहाँ पर रास्ते को रोके पेड़ की एक डाल गिरी दिखाई दी। गाड़ी रुक गई। एक पेड़ की ओट में से नक़ाबवाला व्यक्ति छुरी लिये आ पहुँचा, श्रीकंठ के कंठ पर नोक टिकाकर श्रीकंठ और गाड़ीवाले के हाथ के रुपये लूटा, चलते वक़्त उसने पूछा—"तुम्हारे हाथ में जो पोटली है, वह क्या है?"

"यह तो मिष्टान्न है! बच्चों के वास्ते ले जा रहा हूँ।" श्रीकंठ ने जवाब दिया।

"ओह! मैं भूख से परेशान हूँ। मिष्टान्न तो बड़े लोग भी खा सकते हैं।" यों कहते चोर पोटली खींचकर भाग गया।

चोर के जाते ही गाड़ीवाला सर पीटने लगा—"मैंने अपनी बेटी की शादी के वास्ते जो पाँच सौ जमाकर रखे थे, चोर उसे लूट ले गया।"

रघुपति के साथ जैसी घटना घटी, फिर वही हुई। इसका मतलब है कि गाड़ीवाला भी चोर-चोर मौसेरे भाई है।

इसके बाद गाड़ीवाला पेड़ की डाल को हटाकर गाड़ी को आगे ले जाने लगा। इस पर श्रीकंठ ने गरजकर कहा—"गाड़ी को रोक दो।"

"किसलिए? एक और चोर के हाथों में लुटना चाहते हो?" गाड़ीवाले ने पूछा।

"आने दो उसे भी! हमारे हाथ लुटने के लिए कुछ बचा भी तो! फिर भी मेरे और तुम्हारे भी रुपये कहीं नहीं जायेंगे। जल्द ही वे रुपये हमें लौट आयेंगे।" श्रीकंठ ने समझाया।

"यह कैसे मुमकिन है?" गाड़ीवाले ने पूछा। श्रीकंठ खिल-खिलाकर हँस पड़ा और बोला—"वह मिष्टान्न बच्चों के वास्ते ले जानेवाला नहीं है। चूहों के वास्ते ले जानेवाली दवा है। सुना है कि मेरे दोस्त के घर में चूहों का राज्य है। उसने शहर से खासी अच्छी दवा लाने को

बताया था। चोर उसे खाकर जल्दी मर जाएगा। हम अभी जाकर अपने रुपये ले आ सकते हैं।"

ये बातें सुनने पर गाड़ीवाले का चेहरा सफ़ेद हो उठा। वह थर-थर कांपते चिल्ला उठा—"बेटा, मिस्टान्न मत खाओ।" यों चिल्लाते गाड़ीवाला नीचे कूद पड़ा।

श्रीकंठ भी गाड़ी से उतर पड़ा। उसका गला दबाते पूछा—"अरे चोर के बेटे! इस राहज़नी में तुम्हारा भी हिस्सा है?"

"साहब! लोभ में पड़कर हमने यों लोगों को लूटना शुरू किया है। मेरा बेटा मिष्टान्न खाकर शायद मर जाय!" गाड़ीवाले ने घबराये हुए स्वर में कहा।

इसके बाद दोनों समीप में स्थित एक झोंपड़ी में पहुँचे। गाड़ीवाला जल्दी जल्दी किवाड़ ढकेलकर अन्दर घुस पड़ा। उसके पीछे श्रीकंठ भी भीतर चला गया।

तब तक गाड़ीवाले का बेटा आधा मिष्टान्न डकार चुका था। गाड़ीवाले ने रोने के स्वर में कहा—"बेटा, उसमें चूहों की दवा है! क्या तुमने खा डाला?"

"रोने से जहर का असर जाता न रहेगा। मेरे दोस्त के घर चलो! वैद्य से जहर को निगलवा डालते हैं।" यों श्रीकंठ जल्दी मचाने लगा। यह बात मालूम होते ही गाड़ीवाले के बेटे के बदन में पसीना छूटने लगा। उसे कमजोरी मालूम हुई। उसका पेट मचलने लगा।

इसके बाद तीनों गाड़ी में रघुपति के घर पहुँचे। श्रीकंठ बाप-बेटों को एक कमरे में बिठाकर बोला—"तुम लोग यहीं बैठे रहो, अभी वैद्यजी को बुलवा लेते हैं।" यों कहकर वह भीतर पहुँचा और सारा समाचार रघुपति को सुनाया।

वैद्य का इंतजार करनेवाले बाप-बेटों की खोज में सिपाही आ पहुँचे और दोनों को पकड़ ले गये। उनके जाते वक़्त श्रीकंठ ने समझाया—"मिष्टान्न के अंदर कोई जहर नहीं है। मगर तुम्हारी बीमारी का इलाज करनेवाले वैद्य ये ही लोग हैं।"
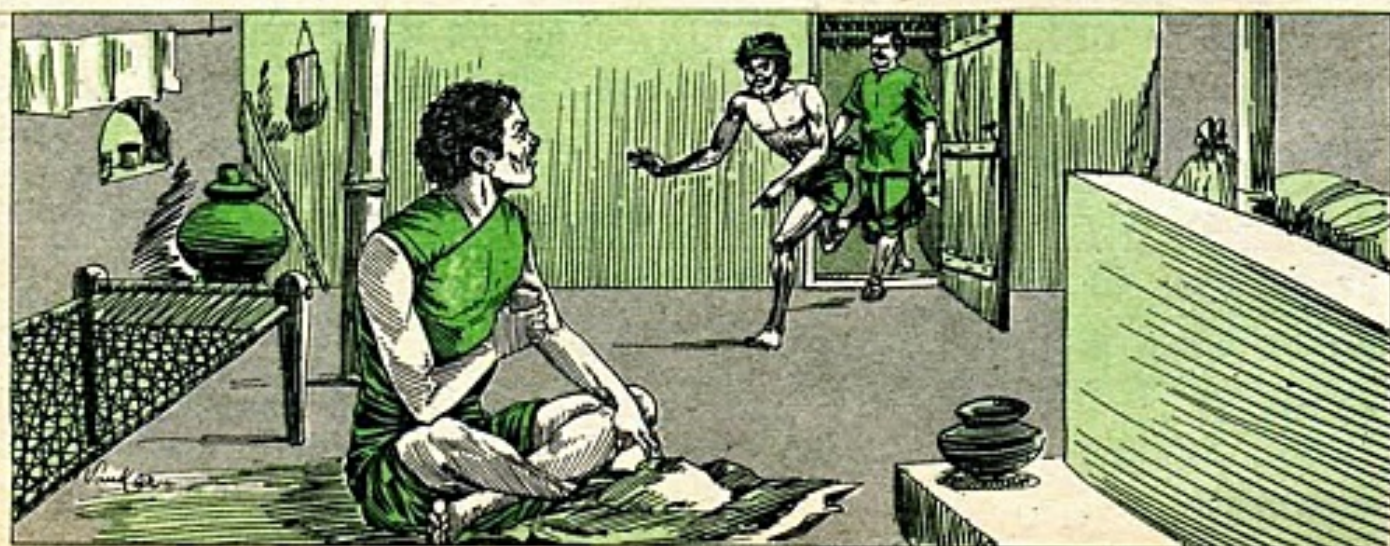
परीक्षा

एक जौहरी ने अपने अनंतर अपना व्यापार अपने दो पुत्रों में से ज्यादा अक़्लमंद पुत्र के हाथ सौंपना चाहा। दोनों के हाथ एक एक हीरा देकर समझाया—"बेटे, इन्हें उत्तम किस्म के हीरे बताकर बेच लाओ।"

बड़े पुत्र ने लौटकर बताया—"बाबूजी, कहते हैं कि वह एक नकली हीरा है। किसी ने आप को धोखा दिया है। उसका दाम सिर्फ़ दस सिक्के मिले।"

छोटे ने लौटकर कहा—"पिताजी, वह एक नकली हीरा था। आप ने गलती से मेरे हाथ दिया होगा, फिर भी उसे अच्छा बताकर एक सौ सिक्कों में बेच डाला।"

इस बार व्यापारी ने अपने बेटों के हाथ अच्छे हीरे देकर समझाया—"बेटे, तुम दोनों ने दो हीरे बेचे, वे बड़े क़ीमती थे। ये तो नकली हैं। इन्हें बेच लाओ।"

बड़े ने लौटकर बताया—"आप ने पहले जो असली हीरा दिया था, उसके साथ नकली हीरे का बदलाव करके उसका नुक़सान मैंने भर दिया है।" यों कहते नकली हीरा अपने पिता के हाथ दिया। दूसरे ने लौटकर कहा—"पिताजी! यही असली हीरा है। इसे मैंने दस हज़ार सिक्कों में बेच डाला, फिर भी सावधानी बरतने के लिए पिछली बार मैंने जो हीरा बेचा था, उसे दस सिक्के और ज्यादा देकर ख़रीद लिया।"

फिर क्या था, व्यापारी ने अपना व्यापार दूसरे पुत्र के हाथ सौंप दिया।

पंडित के शिष्य

गोविंद एक पंडित के घर नौकर था। उसके मन में भी पढ़ने की बड़ी इच्छा थी। इस वजह से वह अकसर अपना काम तक भूल जाता और पंडित अपने शिष्यों को जो पाठ पढ़ाता, उसे ध्यान से सुना करता था।

एक बार वह इसी प्रकार पंडित का पाठ सुनते-सुनते अपना काम भूल गया। इसे भांपकर पंडिताइन ने उसे बुरी तरह से खूब डांटा।

पंडित ने भी गोविंद से पूछा—"अरे, तुम काम करना छोड़कर सुनते क्या हो?"

गोविंद ने विनयपूर्वक कहा—"मालिक! मेरे मन में भी पढ़ने की इच्छा है।"

"तुम्हारी इच्छा तो बड़ी अच्छी है, लेकिन तुम्हारे भीतर पढ़ने की योग्यता भी तो चाहिए? अच्छा, यह बताओ, मैं अब कौन-सा पाठ पढ़ाता हूँ? अगर तुम उस पाठ का अर्थ बता सकोगे तो तुम को भी मैं अपना शिष्य बना लूँगा।" पंडित ने गोविंद से कहा।

पंडित के ये शब्द कहने के पीछे एक कारण भी था। उस दिन वह जो विषय पढ़ा रहा था, वह बड़ा कठिन था। उसके अन्य जो शिष्य उसे सुन रहे थे, उनकी समझ में पूर्ण रूप से नहीं आ रहा था। इसलिए पंडित यह कल्पना तक नहीं कर सका कि गोविंद की समझ में थोड़ा-बहुत ही सही आ सकता है!

पर गोविंद ने उस विषय को समझ लिया और ज्यों का त्यों उसे सुना दिया।

पंडित गोविंद की ग्रहण करने की शक्ति पर मुग्ध हुआ और उस दिन से उसे भी अपने शिष्यों में एक बनाया। थोड़े ही दिनों में गोविंद पंडित के अन्य शिष्यों में से कहीं आगे बढ़ गया।

"वसुंधरा"

शिष्यों ने गोविंद के प्रति अपनी ईर्ष्या प्रकट की। गुरु ने समझाया—"बेटे, मैं क्या करूँ? वह तो सरस्वतीदेवी का अवतार जैसा लगता है? लगता है कि वह मुझसे भी कहीं ज्यादा आगे बढ़ जाएगा!"

विद्याभ्यास करते वक़्त गोविंद कविता करने की शक्ति प्राप्त कर पाया। उसकी कविता की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। बड़े बड़े संपन्न लोग भी उसे अपने घर निमंत्रित करते, उसकी कविता की गोष्ठी कराकर उसका खूब सत्कार करने लगे।

इसे देख पंडित के शिष्य एकदम ईर्ष्या से भर उठे। उन्हीं दिनों में गोविंद ने एक नाटक कंपनी को एक नाटक लिख कर दिया। उसका प्रदर्शन देख सबने गोविंद की बड़ी तारीफ़ की। उस नाटक को अद्भुत बताया। उस दिन से लेकर गोविंद ने संस्कृत में कई नाटक लिखे। फिर क्या था उसे काफी धन के साथ यश भी मिला।

वास्तव में पंडितजी का यश फैलानवालों में गोविंद अकेला ही निकला। बाक़ी शिष्यों में एक भी योग्य नहीं कहलाया।

सब शिष्यों ने मिलकर आपस में यों चर्चा की—"नौकरी-चाकरी करके अपना पेट भरनेवाला गोविंद आखिर हमारे गुरुजी की कृपा से महाकवि बन बैठा है। हमें तो कविता करनी नहीं आई। इसे देख गोविंद और घमण्डी बन गया होगा!
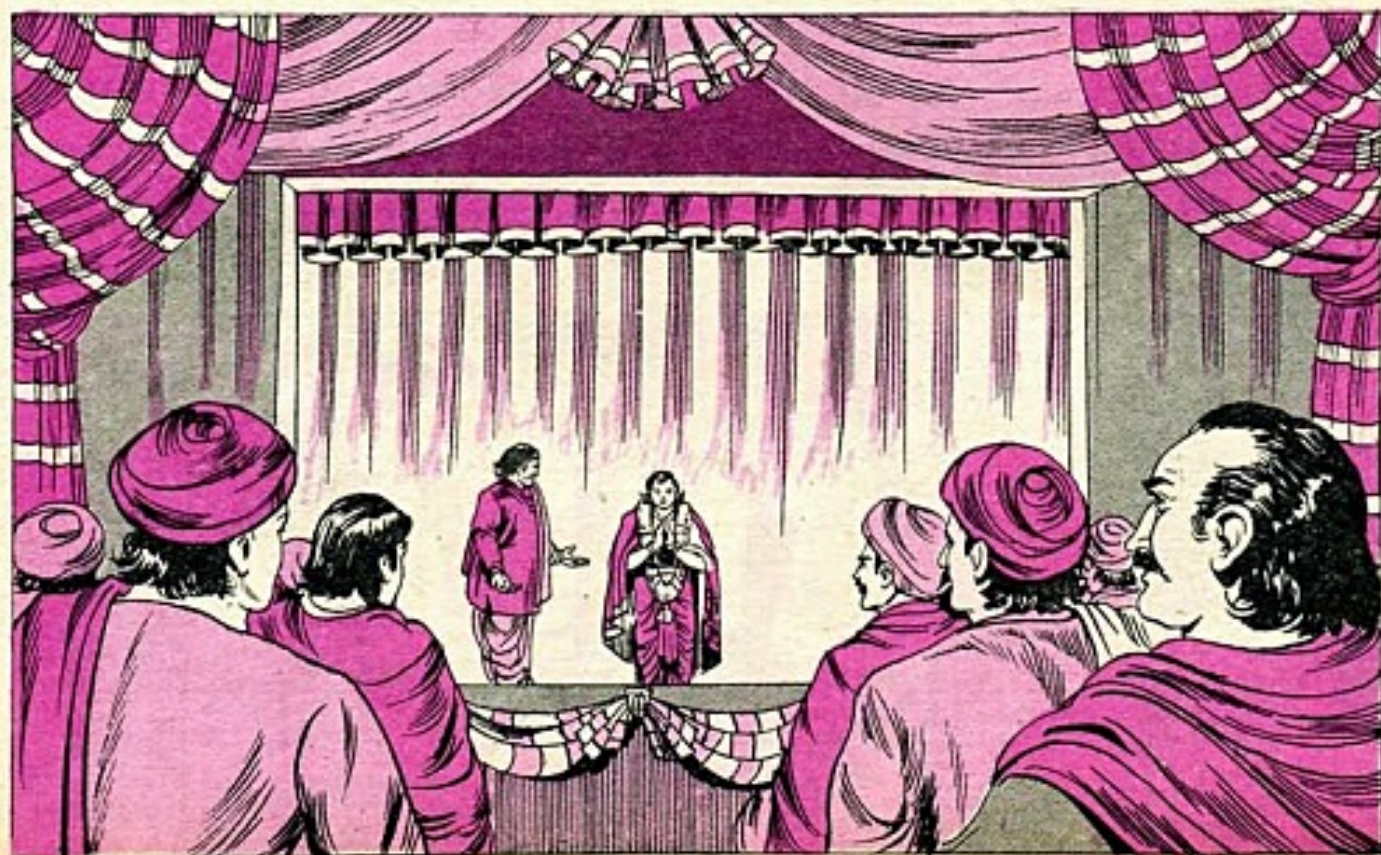
इसलिए उसका घमण्ड तोड़ना हो तो दूसरे प्रांतों से बड़े कवियों को बुलवाकर उनका सत्कार करना होगा।"

इस योजना को अमल करने के ख्याल से पंडितजी के दो-चार शिष्य आन्ध्रप्रांत में गये। उन दिनों में आन्ध्र में नाटक प्रदर्शनों का बड़ा प्रचार था। वहाँ की जनता ने जिन नाटकों को पसंद किया, वे बड़े ही लोकप्रिय बने। इस प्रकार उन दिनों में नाटक रचना में लोकप्रियता प्राप्त करनेवाले तेलुगु नाटककारों में भद्रकवि सर्व श्रेष्ठ थे।

पंडित के शिष्यों ने भद्रकवि के दर्शन करके पूछा—"महाशय, आप के प्रदेश के लोग आप के नाटकों को बहुत ही पसंद करते हैं। आप के कुछ नाटकों के प्रदर्शन हमने खुद देखे भी हैं। आप अगर उनमें से कुछ नाटकों का संस्कृत में अनुवाद करके दे तो हम अपने प्रांत में उनका प्रदर्शन करवायेंगे। आप हमारे प्रांत में भी लोकप्रिय बन सकते हैं।"

इस पर भद्रकवि ने उनके प्रति अपने धन्यवाद समर्पित किये और कहा—"मेरे सभी नाटकों का मूल संस्कृत के नाटक हैं। मैंने सिर्फ़ तेलुगु में उनका अनुवाद किया है।"

"तब तो आप कृपया हमें यह बताइये कि संस्कृत में उन नाटकों को रचनेवाले महाकवि कौन हैं?" पंडित के शिष्यों ने पूछा।

"वे महाकवि उज्जैन नगर के निवासी हैं। उनका नाम गोविंद है।" भद्रकवि ने झट से जवाब दिया।

फिर क्या था, पंडित के शिष्यों की आखें खुल गईं और लज्जा के मारे उनके सर झुक गये। सभी प्रांतों के लोग जहाँ गोविंद के नाटकों का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद करके उनका प्रदर्शनकर आनंद उठाते हैं तो वे उन नाटकों को छोड़ नाहक़ दूसरे प्रांतों का चक्कर लगा रहे हैं। ईर्ष्या क्या नहीं करती! यों सोचकर वे लोग अपने नगर को लौट गये!

पाप का विमोचन

एक गाँव में जग्गू नामक एक डाकू था। उसने अपने किये हुए पापों को पहचाना और सोचने लगा कि उन पापों का विमोचन कैसे होगा? उन्हीं दिनों में उस गाँव में एक कपट साधू आ पहुँचे। उनके उपदेश सुनने के लिए जो लोग जाते, उनसे साधू कहा करते थे–"भक्तो, आखिर लोग क्यों धोखा देते हैं? अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए ही। ऐसा जो पाप किया जाता है, उसका विमोचन तभी होता है, जब कि अन्यायपूर्वक कमाये गये धन में से आधा धन देवताओं के कार्यों में लगाया जाय! धोखेबाजों को पाप से विमोचन कराने के लिए यहाँ पर एक हुंडी रखी गई है। तुम लोग अपनी पापपूर्ण कमाई में से आधी कमाई इस हुंडी में डालकर पाप से मुक्ति पा लो।"

इस पर कई लोगों ने अपने पापों से मुक्ति पाने के लिए अन्यायपूर्वक कमाये गये धन में से आधा साधू की हुंडी में डाल दिया।

दूसरे दिन साधू के शिष्यों ने हुंडी खोलकर देखा। उसमें एक चिट था, उस पर यों लिखा हुआ था–"साधू महाराज! मैंने अपनी जरूरत के वास्ते आप की हुंडी लूट ली। उसमें से आधी रक़म फिर से मैंने हुंडी में डाल दी है। कृपया आप इसे देवता के कार्यों में लगाकर मुझे पाप से मुक्ति दिला दीजिए! जग्गू!"
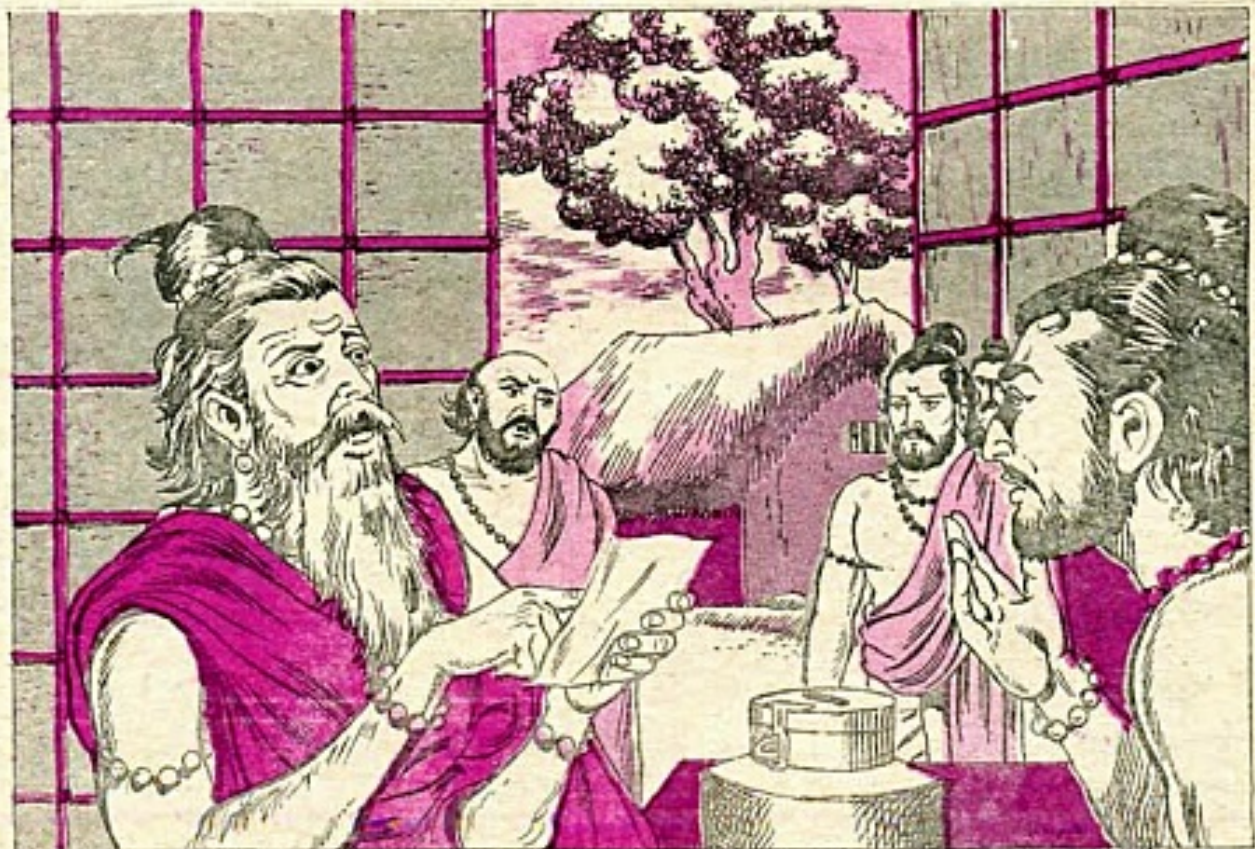
कर्ज ने कर्ज चुकाया

दशरथवर्मा गांव का सब से बड़ा जागीरदार था। उसने अपनी बेटी की शादी के वक़्त एक मशहूर जौहरी के यहाँ से पचास हज़ार रुपयों के गहने खरीदे और अपने पास जो चालीस हजार रुपये की नकद थी, उसे देकर समझाया कि बाक़ी रक़म थोड़े दिनों में चुकाई जाएगी।

जौहरी भार्गवगुप्त दशरथवर्मा को अच्छी तरह से जानता था। इसलिए पचास हज़ार रुपयों के गहने दे दिये। मगर उसने कहीं अपने बही खाते में दशरथवर्मा के नाम क़र्ज नहीं लिखा। भारी पैमाने पर व्यापार करते उसके क़र्ज की बात तक भूल गया।

लेकिन दशरथवर्मा भार्गव के कर्ज की बात भूला नहीं, पर क़र्ज चुकाने के लिए उसके हाथ में रुपये न थे। इस बीच उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ती गई। इसके साथ उसकी तबीयत भी खराब हो गई। मगर अपने अंतिम दिन निकट आया जानकर अपने बेटे रामप्रसाद से बोले—"बेटा, दीदी की शादी के वक़्त मैंने भार्गव से जो गहने खरीदे, उसकी बाबत दस हज़ार का क़र्ज रह गया है। उसके चुकाने के पहले हमारी हालत बिगड़ गई है। मैं भी बीमार पड़ा। तुम अगर वह क़र्ज न चुकाओगे तो मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। मुझे वचन दो, तभी मैं निश्चिंत होकर अपनी आँखें मूंद सकता हूँ।"

रामप्रसाद ने अपने पिता को वचन दिया कि वह भार्गव का क़र्ज ज़रूर चुका देगा। इस पर बेफ़िक्र हो दशरथवर्मा ने सदा के लिए अपनी आँखें मूंद लीं।

इसके बाद रामप्रसाद को अपनी आजीविका के लिए दूसरा मार्ग ढूंढ़ना

रामचन्द्र त्रिपाठी

पड़ा। वह दिन-रात मेहनत करके थोड़ा-थोड़ा करके पैसे बचाता गया। अपना पेट काटकर ही सही वह रुपये बचाता रहा।

आखिर वह अपनी लगन में सफल निकला। दस हज़ार जमा हो गये। वे रुपये लेकर रामप्रसाद भार्गव के घर की खोज करते चल पड़ा। उस मकान में कोई नौजवान था। उसने रामप्रसाद से पूछा—"तुम कौन हो भाई? तुम्हें क्या चाहिए?"

"अजी, मैं भार्गवसाहब से मिलना चाहता हूँ।" रामप्रसाद ने कहा।

"भार्गवसाहब के मरे काफी समय हो गया है। मरते वक़्त वे अपने पुत्र के सर बहुत सारा क़र्ज़ छोड़ गये हैं।" युवक ने उत्तर दिया।

"तो इस वक़्त भार्गवसाहब के पुत्र कहाँ हैं?" रामप्रसाद ने फिर पूछा।

"अपने पिता के क़र्ज़ वह चुका न पाया। इसलिए वह घर छोड़ कहीं भाग गया है!" युवक ने उत्तर दिया। ये बातें सुन रामप्रसाद अचरज में आ गया।

"मैंने तो सुना है कि भार्गवसाहब एक नामी जौहरी हैं। ऐसे व्यक्ति कैसे क़र्ज़दार बने?" रामप्रसाद ने फिर पूछा।

इस पर युवक ने समझाया—"क्या बताऊँ भाई? वे अपने व्यापार से संतुष्ट न रहे, खूब धन कमाने के लिए समुद्री व्यापार करने लगे; आखिर माल सहित
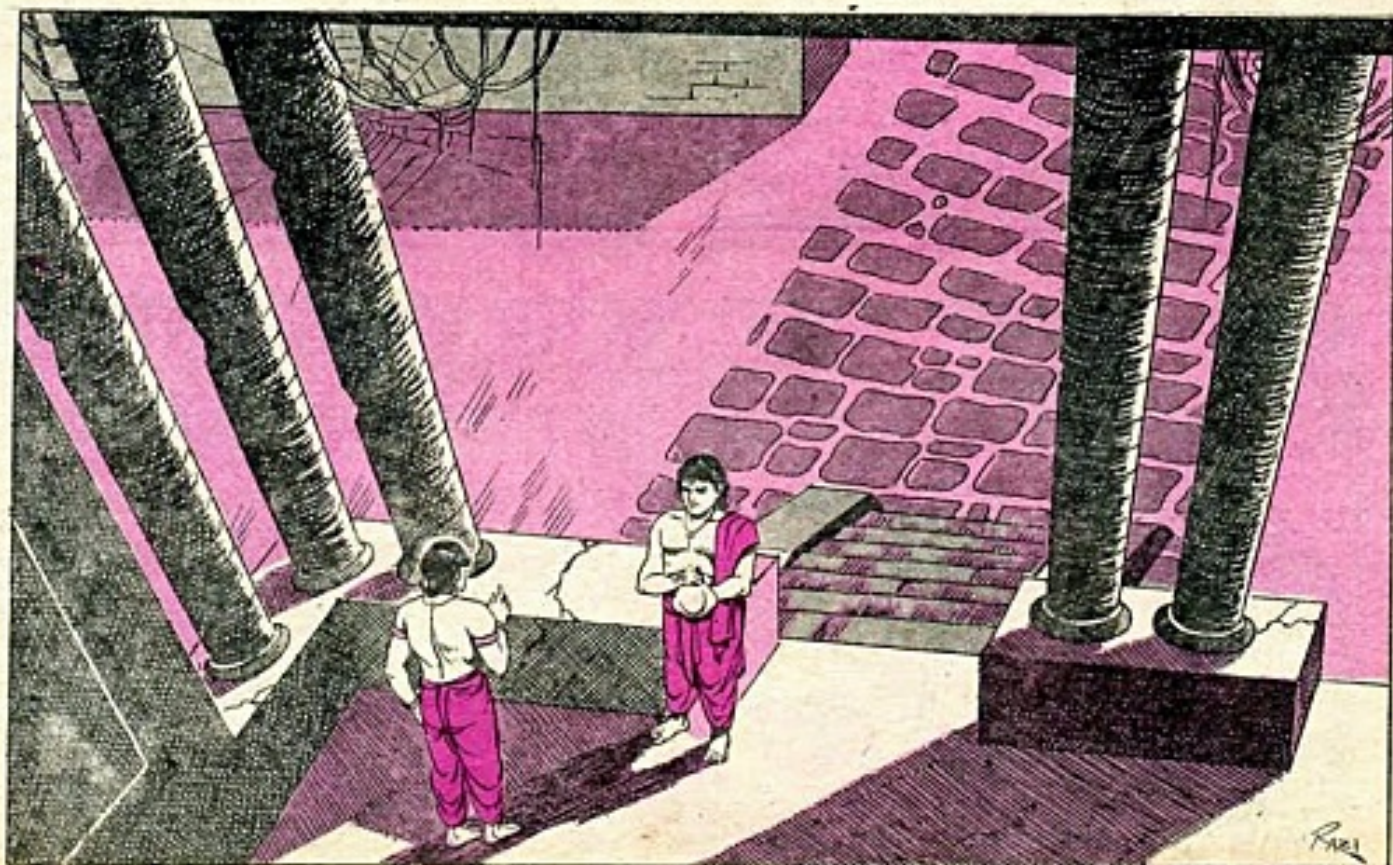
वे भी जहाज़ के साथ समुद्र में डूब गये। लेकिन उनका क़र्ज तो बचा रहा।"

"उफ़! कैसा अन्याय हो गया है! भार्गवसाहब जिन दिनों में गहनों का व्यापार करते थे उन दिनों में मेरे पिता उनके दस हज़ार क़र्जदार बने। भार्गवसाहब की तरह मेरे पिता को भी क़िस्मत ने साथ न दी। हमारी सारी संपत्ति खो गई। आखिरी समय में वे मुझे यह क़र्ज चुकाने के लिए कह गये हैं। मैंने दस हज़ार बचाकर रखे, मेरे पिता का ऋण चुकाने के लिए मुझे इतने साल लगे। पर भार्गवसाहब न रहें तो कोई बात नहीं, लेकिन उनका बेटा तक नहीं रहा। मैं ये रुपये किसके हाथ सौंप दूं? तब तो भार्गवसाहब के नाम एक धर्मशाला बनवाकर मेरे पिताजी की आत्मा को शांति पहुँचा दूंगा।" रामप्रसाद ने अपनी व्यथा प्रकट की।

इस पर झट उस युवक ने कहा–"भाई साहब! मुझे माफ़ कर दो! भार्गवसाहब का लड़का और कहीं नहीं गया है। मैं ही उनका बेटा हूँ! मैं यह सोचकर डर गया कि आप भी मेरे पिता का क़र्ज वसूल करने के लिए आये हैं, इसीलिए आप से मैं झूठ बोला।"

ये बातें सुन रामप्रसाद दुखी होकर बोला–"महाशय! क्या अपने पिता के क़र्ज को देख आप डरते हैं? क्या तक़लीफ़ उठाकर ही सही अपने पिता के क़र्ज चुकाकर उनकी प्रतिष्ठा को बचाये रखना पुत्र का धर्म नहीं होता? मैंने अपने पिता का क़र्ज चुकाने के लिए न मालूम कैसी-कैसी कठिनाइयाँ झेली हैं? आप इस धन को पूंजी बनाकर धन कमा करके अपने पिता के क़र्ज चुका दीजिएगा। पर अपने पिता के क़र्ज को बोझा मत समझियेगा।" यों समझाकर रामप्रसाद ने उस युवक के हाथ में दस हज़ार रुपये रख दिये।

भार्गव के पुत्र ने उस धन को लगाकर फिर से व्यापार किया, खूब धना कमाकर अपने पिता के सारे क़र्ज चुका दिये।

परादेवी आदिशक्ति की आराधना करके वर प्राप्त करनेवाले अनेक हैं !

प्राचीन काल में सुरथ नामक राजा एक विशाल राज्य पर शासन करते थे। ऐसे कोई पुण्य कार्य, नीति और नियम न थे जिनका उन्होंने पालन न किया हो! सब प्रकार से समर्थ राजा सुरथ पर एक बार पहाड़ी व यवन जातियों के लोग बड़ी भारी सेना के साथ हमला कर बैठे।

युद्ध में शत्रु का बल अधिक था, इस कारण राजा सुरथ हार गये। वे अपने दुर्ग में लौट आये। उन्हें मालूम हुआ कि उनके मंत्री भी दुश्मन के समर्थक बन बैठे हैं, साथ ही ईश्वर उनके अनुकूल नहीं हैं। इसलिए वे अपने आप में यों सोचने लगे: "मंत्री जब विश्वासघाती बन बैठे हैं, तब उन पर विश्वास करना खतरे से खाली नहीं है। वे लोग जरूर मुझे ले जाकर दुश्मन के हाथ सौंप देंगे। दुर्जन व्यक्ति सब प्रकार के अन्याय करने पर तुल जाता है। उसके भीतर कोई नीति व नियम न होंगे। ऐसे व्यक्ति बाप, दादा, दोस्त व रिश्तेदार तक का ख्याल नहीं करते।"

यों विचारकर सुरथ अपने एक तेज गतिवाले घोड़े पर सवार हो घने जंगल की ओर आगे बढ़े। उस जंगल में बेलों से घिरे पेड़ों के बीच नदियाँ बह रही थीं। शेर, बाघ, हाथी, हिरण आदि जानवर स्वेच्छापूर्वक विहार कर रहे थे।

१६. सुरथ की कहानी

उस घने जंगल के बीच ब्रह्मचारियों का वेद-पठन सुनाई दे रहा था। होम करने से फैलनेवाली नीवार धान्य की गंध और खूब पके फलों की सुगंध भी चारों तरफ़ व्याप्त थी। ये सब एक मुनि के आश्रम से निकल रही थीं।

सुरथ उस आश्रम की ओर बढ़े। वहाँ पर अपने शिष्यों को पाठ पढ़ानेवाले एक मुनि को देखा। तपस्या के कारण उनका शरीर दुर्बल हो चुका था। वे एक मृग चर्म पर बैठे हुए थे। पर उनका मुखमण्डल शांत था। सुरथ ने अपने घोड़े को एक पेड़ से बांध दिया। मुनि के सामने साष्टांग प्रणाम करके रो पड़े।

मुनि ने सुरथ को अपने हाथों का सहारा देकर ऊपर उठाया। एक शिष्य के द्वारा मृग चर्म मंगवाकर उस पर बिठाया, अतिथि-सत्कार करके पूछा--"बेटा, तुम कहाँ से आ रहे हो? तुम्हें कैसी तक़लीफ़ है? सारी बातें विस्तार के साथ बतला दो। जब तुम मेरे पास आ गये हो, तब तुम्हें चिंता कैसी? तुम्हारे मन की कामना बता दो! चाहे वह जैसी भी कठिन साध्य क्यों न हो, मैं ज़रूर उसे पूरा करूँगा।"

इस पर सुरथ ने गद्गद् कंठ से कहा--"महात्मा! मैं सुरथ नामक एक राजा हूँ! दुश्मन के हाथों में हारकर आप के चरणों की शरण में आया हूँ। मैं अपने राज्य, पत्नी व संतान तक को छोड़कर इस भयंकर जंगल में आप की सेवा में पहुँच गया हूँ! इस वक़्त आप ही मेरे माता-पिता हैं। मैं आप की सेवा करते हुए आप जो भी काम सौंपेंगे, करता रहूँगा। मुझ असहाय को दुश्मन के डर से मुक्त करके मेरे परिवार के पास पहुँचा दीजिए!"

इस पर मुनि ने सुरथ को अभयदान देकर कहा--"तुम वन की वृत्ति का अवलंबन करके नीवारान्न खाते हुए पवित्र रहो और हिंसा किये बिना हमारे आश्रम में स्वेच्छापूर्वक संचार करो! धीरे-धीरे

तुम्हारा शुभ होगा।" ये बातें सुन सुरथ प्रसन्न हो उठे और मुनि वृत्ति का अवलंबन करके आश्रम में ही रहने लगे।

एक दिन सुरथ एक वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर सोचने लगे। अपने प्रयत्न व गलती के बिना ही उन्हें ये सारे कष्ट प्राप्त हुए। याने उनका राज्य चला गया। पत्नी व पुत्रों से वे दूर हो गये। दुश्मन के हाथ हार खाकर अपमानित हुए। इन सारी बातों पर विचार करते वक़्त वहाँ पर एक वैश्य आ पहुँचा। वह अत्यंत दीन मालूम हो रहा था।

सुरथ ने उस व्यक्ति को बिठाकर पूछा—"तुम कौन हो? किस काम से यहाँ पर आये हो? तुम्हें कैसी तक़लीफ़ आ पड़ी है?"

इसके उत्तर में वैश्य ने बताया—"मैं एक वैश्य हूँ। बड़ा ही धनवान हूँ। सत्यव्रती हूँ। बड़े ही दाता और उदार व्यक्ति के रूप में भी मशहूर हो गया हूँ। मुझे आज तक कोई तक़लीफ़ भी नहीं हुई। ऐसे मुझ को धन के लोभ में पड़कर मेरी पत्नी व पुत्रों ने घर से निकाल दिया है। इसलिए इस जंगल में चला आया हूँ। मुझे लोग समाधी कहते हैं। क्या मैं भी आप का वृत्तांत जान सकता हूँ? आप के चेहरे पर तेज दमकता है!"

"मेरा नाम सुरथ है! मैं एक राजा हूँ! शत्रु के हाथों में पड़कर बुरी मौत मरना नहीं चाहता था, इसी वजह से इस जंगल में आया हूँ। मैं अपनी संपत्ति खोकर, अहं को त्याग एक जड़ वस्तु की भांति यहाँ पर संचार कर रहा हूँ। संयोग से हम दोनों यहाँ पर मिले। इसलिए हम अपनी सारी चिंताओं को त्यागकर यहीं पर सुखपूर्वक अपने दिन बितायेंगे।" सुरथ ने कहा।

इस पर वैश्य ने कहा—"राजन, मेरे मन को शांति कहाँ? मैं अपनी पत्नी के सुख से वंचित हो गया हूँ। मेरे परिवार के लिए कोई आधार नहीं है। मेरे पुत्र

एकदम अयोग्य हूं! मैंने कांजी पीकर जो कुछ धन इकट्ठा किया, वह सारा धन मेरे बच्चे बेकार खर्च करके दरिद्र बन जायेंगे, इस चिंता से मैं परेशान हूं। ऐसी हालत में मुझे शांति कहां मिलेगी? न मालूम मैं फिर से प्राणों के साथ उन्हें देख सकूंगा या नहीं?" यों कहते वैश्य दहाड़े मारकर रो पड़ा।

सुरथ ने वैश्य को समझाया–"जिन दुष्टों ने तुम्हें घर से निकाला, उन्हें देखने पर तुम्हें सुख कैसे प्राप्त होगा? मैं भी अपने राज्य खोने की बात पर चिंता किया करता हूं। संयोग से जो विपदाएँ आती हैं, उनसे मुक्त होना है तो उनका अनुभव करना ही होगा! फिर भी हम यहाँ के मुनि से परामर्श करके अपने दुखों को दूर करने का कोई उपाय हो तो उनसे जान लेंगे!"

वैश्य ने सुरथ की बात मान ली। दोनों मुनि के पास जाकर प्रणाम करके खड़े रह गये। उस समय सुरथ ने मुनि से यों निवेदन किया:

"महात्मा! ये एक वैश्य हैं। इस जंगल में ही ये मेरे मित्र बन गये हैं! इस पुण्यात्मा को अपनी पत्नी और पुत्रों ने घर से भगा दिया है, इसलिए आप की शरण में आये हुए हैं। आप ने जैसे मेरी रक्षा की, उसी प्रकार इनकी भी रक्षा कीजिए! मैं आप की कृपा से यहाँ पर सुखपूर्वक अपना समय बिता रहा हूँ। फिर भी मैं अपने कष्टों को भूल नहीं पाता हूँ, इसलिए मैं निद्रा से वंचित हूं! इसलिए हे महात्मा! हम पर अनुग्रह करके हमारे शोक को दूर करने का कोई उपाय बताइये।"

सुरथ की बातें सुन मुनि ने समझाया–"त्रिमूर्ति भी माया के वशीभूत हो मोहसागर में बहे जाते हैं तो तुम जैसे साधारण मानवों की बात क्या कही जाय? इसके उदाहरण के रूप में मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं!"

कृतयुग में श्वेतद्वीप में नारायण तपस्या किया करते थे, उस वक़्त ब्रह्मा भी अपने मोह से मुक्ति पाने के लिए तप करने लगे। थोड़े दिन बाद दोनों जब अपने स्थान छोड़कर लौटने लगे, तब दोनों की एक जगह मुलाक़ात हो गई। दोनों ने एक-दूसरे का परिचय जान लिया। ब्रह्मा ने कहा–"मैं चर और अचर विश्व का सृष्टिकर्ता हूँ!"

इस पर विष्णु बोले–"क्या तुम मेरे ही समक्ष अपने को सारे विश्व का सृष्टि-कर्ता बताते हो? तुम्हारी हस्ती ही क्या है? मैं तो विष्णु हूँ? इस सारी सृष्टि की रचना मैंने की है! क्या यह बात भूल गये कि एक बार मैंने मधु और कैटभ दानवों का संहार करके तुम्हारी रक्षा की है? तुम्हारे भीतर राजसी वृत्ति ज्यादा है। तुम ऐसा घमण्ड क्यों करते हो? मैंने पाल-पोसकर तुम्हें बड़ा किया। दानवों के हमला करने पर तुम घबराकर भाग गये। ये सारी बातें भूलकर तुम मेरे ही सामने अपनी हेठी जताते हो?"

इसके उत्तर में ब्रह्मा ने कहा–"क्या आप भी यह बात भूल गये? जब आप राक्षसों के साथ युद्ध कर रहे थे, तब क्या जगदांबा ने आप की मदद नहीं की? आप भी यों डींग क्यों मारते हैं?

ब्रह्मा और विष्णु जब यों वाद-विवाद कर रहे थे, तब उन्हें एक लिंग दिखाई दिया। उन्हें ये बातें सुनाई दीं:

"हे नारायण! हे ब्रह्मा! आप लोग अपना वाद-विवाद छोड़कर मेरी बातें सुन लीजिए! इस श्वेत द्वीप पर इस समय जो लिंग उभर आया है, इसके आदि और अंत को देख आप में से जो व्यक्ति पहले लौट आयेंगे, वे ही बड़े व्यक्ति माने जायेंगे।"

इस बात को दोनों ने मान लिया। लिंग का आदि जानने के लिए विष्णु पाताल लोक को चले गये और लिंग का अंत देखने के लिए ब्रह्मा आकाश की ओर।

विष्णु पाताल लोक में बहुत ही गहराई तक पहुँचे, पर लिंग का आदि उन्हें कहीं दिखाई नहीं दिया। विष्णु को इस बात की चिंता सताने लगी कि उन्हें लिंग का आदि शायद दिखाई ही न देगा।

इसी प्रकार ब्रह्मा आसमान में बहुत दूर तक पहुँचे, मगर उन्हें लिंग का छोर दिखाई न दिया। इस पर ब्रह्मा को लज्जा के साथ दुख भी हुआ। उन्हें कुछ न सूझा, इसलिए एक जगह खड़े रह गये। तब उन्हें ऊपर से पृथ्वी की ओर गिरनेवाला केवड़े का एक फूल दिखाई दिया। ब्रह्मा ने उसे पकड़ लिया, बड़ी खुशी के साथ विष्णु के पास पहुँचकर बोले–"मैं लिंग के छोर को देख आया हूँ। वहाँ से केवड़े का यह फूल ले आया हूँ।"

इस पर विष्णु ने केवड़े के फूल से पूछा–"बताओ, ब्रह्मा ने क्या सचमुच लिंग के सिर को देख लिया है? देवताओं ने क्या तुम्हें लिंग पर उतार दिया है?"

"जी हाँ, ये बातें बिलकुल सत्य हैं?" केवड़े ने विष्णु से झूठी बात कह दी।

विष्णु केवड़े की बात पर विश्वास नहीं कर पाये। उन्होंने कहा–"इस जगत के कई लोग धन के वास्ते झूठी गवाहियाँ देते हैं! इस मामले में मैं शिवजी की बात को छोड़ किसी और की बात पर विश्वास न करूँगा।"

उस वक़्त अचानक लिंग का रूप अदृश्य हो गया। शिवजी ने विष्णु से कहा–"केवड़ा झूठ बोला है! वह मेरे सिर पर से नीचे गिर रहा था, तब रास्ते में उसे देख ब्रह्मा ने अपने हाथ में ले लिया और यहाँ ले आये हैं। लेकिन सच बात यह है कि उन्होंने मेरे सिर को देखा तक नहीं है।"

इसके बाद शिवजी ने केवड़े को शाप दिया कि वह उनकी पूजा के योग्य नहीं है। तब ब्रह्मा और विष्णु अपने अपने रास्ते चले गये।

मुनि ने राजा सुरथ और समाधी नामक वैश्य को यह वृत्तांत सुनाकर यों कहा–"राजन, मोह पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकते। बड़े बड़े कुशल व्यक्ति भी मोह के वशीभूत हो जाते हैं। मोह के वशीभूत न होनेवाली केवल जगदांबा अकेली हैं। उनके लक्षण जाननेवाले ही मोह-सागर को पार कर सकते हैं।"

इस पर सुरथ ने मुनि से पूछा–"महात्मा, वे लक्षण क्या हैं?"

मुनि ने यों कहा–"अंबा की पूजा शुभ दायक है! वह समस्त कामनाओं की पूर्ति करती है। आश्विन मास में किया जानेवाला यह नवरात्र व्रत है! यह व्रत आश्विन तथा चैत्र मास दोनों के आरंभ में नौ दिन तक करना होगा। व्रत करनेवालों को उपवास करके मंत्र जपते घी, दूध व चीनी से बनी खीर या बकरी के माँस अथवा बेल के पत्तों के साथ होम करके ब्राह्मणों को दावत खिलानी होगी। साथ ही नवरात्र की पूजा करनेवाले को जाति-पांति और स्त्री-पुरुष का भेदभाव नहीं रखना चाहिए। देवी की पूजा के वास्ते छे कोनोंवाला यंत्र और उसकी बगल में आठ कोनोंवाले यंत्र की रचना करके नवाक्षर बीज मंत्रों के साथ प्राण-प्रतिष्ठा करके मण्डल के मध्य भाग में तांबे के पात्र को रखना होगा। तब उसकी षोड़श उपचारवाली पूजाएँ करनी होंगी। होम, होम का दसवाँ भाग तर्पण, तर्पण का दसवाँ हिस्सा ब्राह्मणों को दावत वगैरह संपन्न करनी होगी। दसवें दिन पारण करना होगा। इस प्रकार करनेवाले को उत्तम लोक और देवी की सहायता भी प्राप्त होगी।

"राजन, देवी की पूजा से बढ़कर कोई चीज नहीं है। देवी की अर्चना करने पर तुम अपने परिवारवालों से फिर मिल सकोगे। हे वैश्य श्रेष्ठ! तुम भी देवी की पूजा करो। तुम अपने दुख को खोकर फिर से धनी बन जाओगे।"

मुनि की ये बातें सुनकर दोनों खुश हुए, तब बोले—"महात्मा! आप की कृपा से हमारा दुख दूर हो गया है। इसलिए हमें उस मंत्र का उपदेश दीजिए।"

इस पर मुनि ने उन्हें नवाक्षर मंत्र का बीज सहित उपदेश दिया। वे मुनि की अनुमति लेकर एक नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ पर एक निर्जन प्रदेश में पत्ते खाते हुए दो वर्षों तक उस मंत्र का जाप किया। एक दिन सपने में उन्हें देवी लाल वस्त्र धारण कर दिखाई दीं। फिर भी उन लोगों ने तपस्या बंद नहीं की। तीसरा वर्ष जल को ही आहार बनाकर बिताया, फिर भी देवी का साक्षात्कार न हुआ।

इस पर उन्होंने अपनी आत्माहुति करने का निश्चय किया, एक कुंड खोदकर उसमें आग जलाई, अपने शरीर का मांस काटकर अग्नि को समर्पित करने लगे, तब देवी उनके सामने प्रत्यक्ष हो गईं। उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारे साहस पर प्रसन्न हूँ। तुम लोग जो वर चाहे, मांग लो।"

इस पर सुरथ ने कहा—"हे मा[illegible] शत्रु के हाथों में हारकर राज्य खो बैठा हूँ, इतने दिन बाद मेरा पुण्य सफल हुआ और आप के दर्शन हो गये। मुझे अपना राज्य वापस दिलाकर इन कष्टों से मुक्ति दिला दीजिए।"

तब देवी ने कहा—"तुम अपने शत्रुओं को हराओगे! तुम्हारे मंत्री पश्चात्ताप करते हुए तुम्हारी सेवा करने के लिए खुद आ जायेंगे। तुम एक हज़ार वर्ष तक सुखपूर्वक राज्य करोगे।"

इसके बाद सुरथ अपने घोड़े पर सवार हो अपने राज्य को लौटा। शत्रुओं को हराकर फिर से शासन करते हुए आखिर देवी के सान्निध्य को प्राप्त किया।

लेकिन वैश्य ने कहा—"माताजी! मुझे धन-संपत्ति नहीं चाहिए। शाश्वत सुख चाहिए।"

देवी ने उसे दिव्य ज्ञान प्रदान किया। वह जीवन भर वैरागी हो तीर्थाटन करते हुए देवी के सान्निध्य को प्राप्त हुआ।

अपराध का निरूपण

किसी देश में एक धनी था। उसके तीन पुत्र थे। मरते वक़्त उसने अपने तीनों बेटों को निकट बुलाकर समझाया–"बेटे, मुझे ले जाने यमराज के दूत आनेवाले हैं। मैंने कड़ी मेहनत के साथ बड़ी संपत्ति जोड़कर रखी है। उस संपत्ति में ज्यादा क़ीमती चीज़ें ये तीनों हीरे हैं। अगर किसी कारण से तुम लोग अलग होना चाहते हो तो ये तीनों हीरे एक-एक ले लो; तीनों की क़ीमत बराबर है।"

अपने पिता के मरने के बाद तीनों बेटों ने एक एक हीरा लेने के ख्याल से संदूक़ खोलकर देखा, मगर उसमें दो ही हीरे थे। तीसरे हीरे को किसी ने चुरा लिया था। चोर तो तीनों भाइयों में से कोई एक हो सकता था।

बड़े भाई ने समझाया–"हममें से किसी ने एक हीरा चुराया है। लेकिन आपस में किसी की निंदा करना ठीक नहीं है। हीरे को चुरानेवाला अपने अपराध को स्वीकार करने में संकोच का अनुभव कर सकता है। इसलिए अच्छा यह होगा कि किसी का अपमान न हो और साथ ही किसी का अन्याय भी न हो, इस वास्ते कल तक जिसने हीरा उठाया है, वह उसी जगह रख दे।"

"अगर नहीं रखा है तो क्या करना होगा?" दूसरे ने पूछा।

"हम तीनों जाकर राजा से फ़रियाद करेंगे। अपराध का निरूपण करने की जिम्मेदारी राजा की ही है न?" बड़े ने समझाया।

"यह विचार तो बड़ा ही अच्छा है।" तीसरे भाई ने कहा।

एक दिन बीत गया। लेकिन खोया हुआ हीरा न मिला। उसी दिन घर से

२५ साल पूर्व चन्दामामा की कहानी
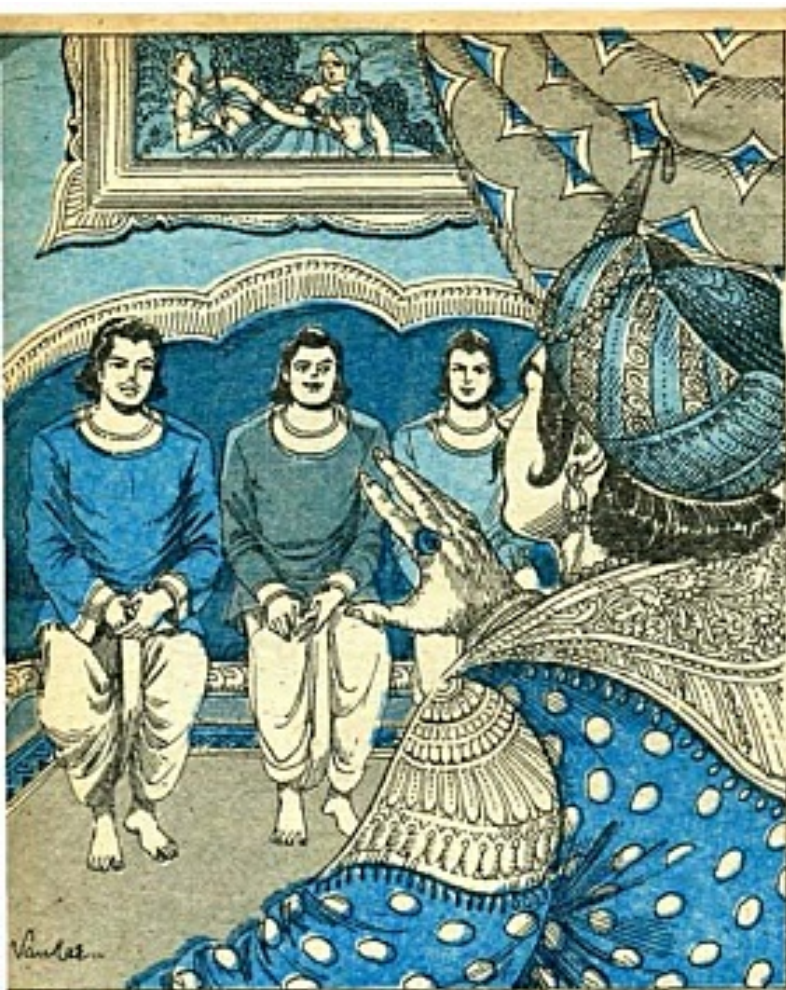
निकलकर तीनों भाई राजा की सेवा में पहुँचे। राजा को सारा समाचार सुनाकर निवेदन किया कि तीनों में से जो चोर है, उसका निर्णय करे।

यह फ़रियाद सुनकर राजा आश्चर्य में आ गये। क्योंकि वे उन तीनों भाइयों को अच्छी तरह से जानते थे।

राजा ने सोचकर बताया–"तुम्हारे पिता तो बड़े ही धर्मात्मा है। न्याय प्रिय व्यक्ति हैं। उनके पुत्रों के द्वारा सुमुचित निर्णय की मांग करना मेरे लिए प्रसन्नता और चिंता की भी बात है! मैं जानता हूँ कि तुम लोग इस समस्या को सुलझा न पाये, इसलिए मेरे पास आये हो! मैं थोड़े दिनों में तुम्हारी समस्या हल करूँगा। तब तक तुम लोग भठियारिन के घर निवास करो। तुम्हारे लिए आवश्यक सारी सुविधाओं का मैं इंतज़ाम करूँगा।"

इसके बाद तीनों भाई भठियारिन के घर पहुँचे। दिन बीतते गये, राजा दिन-रात इस समस्या के बारे में सोचते रहें, मगर उनकी समझ में न आया कि इसका हल कैसे करें? एक दिन राजा ने भठियारिन को बुलवाकर पूछा :

"काकी, तुम्हें इन मेहमानों के जरिये कोई तक़लीफ़ तो नहीं हो रही है न?"

"नहीं, महाराज! ये तीनों बड़े ही अच्छे आदमी हैं! साधु स्वभाव के हैं।" भठियारिन ने जवाब दिया।

"इसीलिए मैं भी कुछ निर्णय नहीं कर पाता हूँ। पर इनमें से एक बड़ा साहसी चोर है।" राजा ने कहा।

भठियारिन ने अचरज में आकर राजा से विवरण जानना चाहा, राजा ने सारी बातें साफ़-साफ़ सुनाईं।

"तब तो महाराज, मैं पता लगाऊँगी कि उनमें से सच्चा चोर कौन है? आप चिंता न करें।" भठियारिन ने कहा।

उस दिन रात को भठियारिन ने व्यापारी के पुत्रों को खाना परोसते हुए एक छोटी सी कहानी सुनाई। वह यों है :

"बात बहुत पुरानी है। किसी देश में सिंहकेतु नामक एक राजा राज्य करते थे। उनके गुणवती नामक एक पुत्री थी। राजा ने अपनी कन्या के युक्त वयस्का होने तक एक पंडित के यहाँ विद्या सिखलाई। जब उसके विवाह के प्रयत्न होने लगे, तब राजा ने गुणवती की पढ़ाई बंद करवा दी। एक दिन गुणवती ने अपने गुरु के पास कई वस्त्र, आभूषण और धन ले जाकर गुरु दक्षिणा के रूप में समर्पित किया। लेकिन गुरु ने उन्हें लेने से इनकार किया और कहा–"अगर तुम मुझे गुरु दक्षिणा देना चाहती हो तो विवाह के बाद अपने पति के घर जाने के पहले अपने सारे आभूषण धारण कर अकेली एक रात को मेरे पास आना होगा!" गुणवती ने अपने गुरु की बात मान ली और वहाँ से चली गई।

इसके थोड़े दिन बाद गुणवती का विवाह हुआ। विवाह के दिन की रात को ही गुणवती ने अपने पति से अपनी गुरुदक्षिणा की बात बताई। गुणवती के पति ने बताया–"अच्छी बात है! तुम अपने गुरु के पास हो आओ।"

गुणवती अपने सारे गहने पहनकर गुरु के निवास की ओर चल पड़ी। रास्ते में उसे एक डाकू ने रोका और उसके सारे गहने उतारकर देने को कहा। वरना मार डालने की धमकी दी। गुणवती ने डाकू को अपनी गुरुदक्षिणा की बात बताई और

गुरु के यहाँ से लौटते वक़्त सारे गहने उसे सौंपने का वचन दिया ।

डाकू ने गुणवती की बात मान ली ।

इसके बाद गुणवती गुरु के घर पहुँची । गुरुजी अपनी शिष्या की ईमानदारी पर प्रसन्न होकर बोले–"बेटी! तुमने मेरी विद्या को सार्थक बनाया । किस प्रकार का खतरा पैदा हो सकता है, इसके बारे में सोचे बिना ही तुमने अपने वचन का पालन किया । यही मेरे लिए सच्ची गुरुदक्षिणा है । तुम अपने महल को लौटकर अपने पति के साथ सुखपूर्वक गृहस्थी चलाओ ।" इन शब्दों के साथ गुरु ने गुणवती को आशीर्वाद दिये ।

गुणवती अपने गुरु को प्रणाम कर चल पड़ी । रास्ते में अपना इंतज़ार करनेवाले डाकू को देख गुणवती बोली–"भाई! अब मेरे ये सारे गहने आप ले लीजिए!"

ये बातें सुनने पर डाकू का दिल पिघल उठा । वह गुणवती के पैरों पर गिरकर बोला–"बेटी, मुझे माफ़ कर दो । तुम जैसी ईमानदारों के रहनेवाली इस दुनिया में मैं चोरी करके जी नहीं सकता ।" यों कहकर वह अंधेरे में ओझल हो गया ।

गुणवती ने लौटकर सारा वृत्तांत अपने पति को सुनाया । इस पर वह बड़ा खुश हुआ । इसके बाद उन दोनों ने कई वर्षों तक सुखपूर्वक अपने दिन बिताये ।'

भठियारिन के मुँह से यह कहानी सुनकर धनी के तीनों पुत्र बहुत खुश हुए ।

पर भठियारिन ने उन तीनों भाइयों के सामने अपनी शंका प्रकट कर पूछा–"सुनो बेटे, मेरा संदेह यह है कि इस कहानी में कई लोग उदार स्वभाव के व्यक्ति हैं । मगर यह बताओ कि उनमें से सब से बड़ा उदार व्यक्ति कौन है? यही संदेह मुझे कई दिनों से सता रहा है । क्या तुम लोग मेरे इस संदेह का निवारण कर सकेते हो?"

बड़े भाई ने सोचकर बताया–"विवाह के दिन की रात को ही अपनी पत्नी को

गुरु के पास भेजनेवाले पति की उदारता सब से महान है ।"

दूसरे ने कहा–"नहीं, इससे भी बड़ी उदारता तो गुरुजी की है ।"

तीसरा भाई बोला–"अपने हाथ लगे गहनों को हड़पे बिना राजकुमारी को छोड़नेवाले चोर की उदारता महान है ।"

इस पर ये शब्द कहते भठियारिन हँसकर बोली–"बेटे, अपने पति के क्रोध, गुरुजी के द्वारा अपमान और डाकू के लोभ का भी सामना करनेवाली गुणवती की उदारता क्या तुम तीनों में से किसी को भी महान मालूम नहीं हुई ?"

फिर क्या था, उसी दिन भठियारिन राजा के पास पहुँची और बोली–"महाराज, मेरे घर रहनेवाले तीनों भाइयों में से छोटा भाई ही निश्चय ही चोर है । आप फ़ैसला कर सच्ची बात जान लीजिए ।"

राजा ने उसके इस निर्णय का कारण पूछा । तब भठियारिन ने सारा वृत्तांत सुनाकर कहा–"अगर छोटा भाई धन का लोभी न होता तो वह चोर की उदारता की प्रशंसा न करता ।"

राजा ने भठियारिन की बातों की सचाई भांप ली और उसकी बुद्धिमत्ता पर चकित हुए ।

दूसरे दिन राजा ने तीनों भाइयों को बुला भेजा और कहा–"रत्नपेटिका में रखे गये हीरों को बड़े भाई और मंझले भाई का लेना उचित है । यही न्याय संगत भी ।"

तीसरा भाई अपने बड़े भाइयों के चेहरे देख न पाया । उसने अपना सर झुका लिया । राजा ने जो निर्णय सुनाया, उसके विरुद्ध कुछ नहीं कहा ।

इसके बाद तीनों भाई घर चले गये । अपने पिता की बाक़ी संपत्ति को भी तीनों भाइयों ने बराबर बांट ली ।

इसके बाद उन लोगों ने कभी इस बात की चर्चा नहीं की कि वास्तव में हीरे की चोरी किसने की है? वे लोग अत्यंत भातृभाव से अपने दिन बिताने लगे ।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अप्रैल १९८० के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।
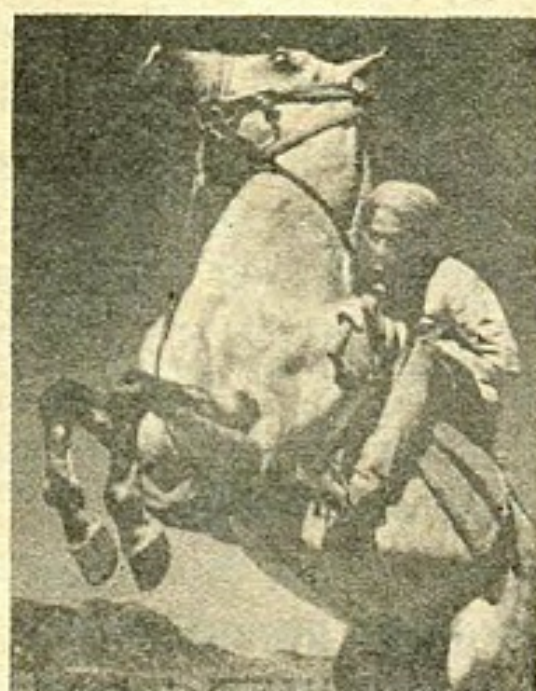
A. L. Syed

A. L. Syed

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों ।

★ फ़रवरी १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा ।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा ।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

दिसंबर के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : **गरीब बच्चों की मेहनत !**

द्वितीय फोटो : **अमीर कुत्ते की क़िस्मत !!**

प्रेषक : **सय्यद बंदे अली,** टेलिफोन एकचेंज, यल्ला रेड्डी - ५०३१२२ (आं. प्र.)

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी ।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor : NAGI REDDI.

हुर्रे
असोका ग्लूकोज
मिल्क बिस्कुट!
ASOKA
Glucose
Asoka
Glucose
MILK BISCUITS
Asoka

राम और श्याम

भगोड़े से भिड़न्त